कुहरों के साये



गणेश दत्त दूबे

कुहरों के साये

(कहानी संग्रह)



गणेश दत्त दूबे

प्रथम आवृत्ति — १९९६

मूल्य — पच्चीस रूपये मात्र

प्रकाशक — कमलेश प्रकाशन
H. I. G. – 16 – अशोक विहार द्वितीय चरण,
पहड़िया,
वाराणसी

मुद्रकः — विजय प्रेस,
सरसवलो, वाराणसी

KUHARON KE SAYE

(Short Story Collection)

GANESH DATTA DUBEY

समर्पण

पुत्री

स्वर्गीया श्रीमती पूनम त्रिपाठी

एडवोकेट

बी० एस० सी; बी० एड०; एल० एल० एम०

को

जिसने

अपने जीवन में

किसी भी ऊँचाई को छूने में

कोई

कोर कसर नहीं

की

प्राक्कथन

कहानी कब लिखनी प्रारम्भ की यह कहना कठिन है। मेरी पहली कहानी सेंट ऐन्ड्रूज कालेज, गोरखपुर के १९५१-५२ सत्र की पत्रिका के बाइसवें वाल्यूम के प्रथम अंक में प्रकाशित हुई। यह कहानी गोरखपुर के लोको कारखाने के इर्द-गिर्द घूमती हुई थी। इसे पुरस्कार हेतु एक प्रतियोगिता में भेजा गया था और इसे तृतीय पुरस्कार प्राप्त भी हुआ था। प्रतियोगिता की शर्त थी कि प्रविष्टि हेतु, ऐसी कहानियाँ हों, जो रेलवे कारखाने के वातावरण से उपजी हो। पुरस्कार प्राप्त करने का तथ्य कालेज मैगजीन के सम्पादकीय में लिखा है। यह कहानी है "प्रीतम आय बसो मोरे मन में।"

सन् १९७८ के पूर्व मेरी अनेक कहानियाँ पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही है। इन पर चर्चायें भी हुईं। स्वर्गीय श्री देवनाथ पाण्डेय "रसाल" ने मेरी कहानी "टुकड़ा एक रोशनी का" पर मुझे पत्र लिखा था। उन्होंने लिखा—

"मध्यवर्गीय व्यक्ति की आर्थिक टूटन का बोध कराने वाला "टुकड़ा एक रोशनी का" आनन्द की अनुभूति से हृदय भर गया है। आपके कहानीकार का आशावादी दृष्टिकोण मुझे सदैव भाया है। आपकी कहानियाँ लघुता में जीवन के "फ्लैशेज" उभार कर, दर्द, टीस, और फिर किसी भरोसे से उल्लासमयी मुसकान की छवियाँ उतार कर क्षणिक जीवन को जीने के योग्य कर जाती हैं।

माधव आर्थिक अभावों में टूटा-टूटा है। मानसिक उलझनों से ग्रस्त है। यहाँ तक का चित्र कमरे में बैठे-बैठे, माधव पाठक के सामने अपनी

पीड़ा, अपनी अकुलाहट साकार कर जाता है। फिर स्मृति का झरोख खुलता है। टुकड़ा एक रोशनी का तिरता हुआ, सारे अवसाद को धं देता है। पाठक माधव की छटपटाहट के वाद की सुखद आनन्दानुभूरि को अपने में उतार कर गदगद हो उठता है।

जीवन की सुखद अनुभूतियाँ आपकी लेखनी की नोक में सिमट जातं है जैसे कैमरे की सूक्ष्मातिसूक्ष्म आँख में बाहर की विशालता, बाहर क पूरा फैलाव।

"मुझे कहानी पसन्द आई। बधाइयाँ।"

इस कहानी को इस संग्रह में "टुकड़ा रोशनी का" शीर्षक से दिय गया है। शीर्षक में परिवर्तन का सुझाव मेरा पुत्री स्वर्गीया श्रीमती पून त्रिपाठी वी० एस० सी०, बी० एड०, एल० एल० एम०, ऐडवोकेट का था

इस संग्रह की अन्य कहानी पर श्री देवनाथ पाण्डेय "रसाल" ज ने मुझे लिखा था—

"दीपावली, आलोक पर्व, की बधाई स्वीकारे।"

दुहरी बधाइयों के आप अधिकारी हैं। आपका "अस्तित्वहीन व्यक्ति की विवशता, दयनीयता, असमर्थता, खोखलापन का आँसू डू हस्ताक्षर है। पढ़ लेने पर एक ओर व्यक्ति के मैं से लेकर 'राम 'रहमान' 'अखिलेश' 'डाक्टर' आदि तक "वह" के दायरे में बँधी सृष्टि का "हाँ" और "ना" के माध्यम से व्यक्त विश्लेषणत्मक सह अस्तित भास्वर है, जो युग और जग की माँग है और चाह है तो दूसरी ओ व्यंग्य कुलबुलाता सा भी है कि किए जाओ बके जाओ लेकिन "श्रीमान "हो क्या ?" दूसरे शब्दों में न "मैं" कुछ हूँ, न "वह" कुछ है। स अस्तित्वहीन हैं।

तराश के बाद कहानी अपनी वैचारिक सघंनता छोड़ने में अत्यन्त सफल हुइ है। बधाइयाँ।"

मेरी कहानी "दाना" पर प्रतिक्रिया स्वरूप मुझे एक अन्तर्देशीय पत्र मिला जिस पर भेजने वाले के नाम के स्थान पर केवल c/o सम्पादकीय "आज" लिखा था। भेजने वाले ने अपना नाम क्यों नहीं लिखा यह वह ही जाने। पत्र में लिखा था—

"आपका "दाना" आज विशेषांक दिनांक १७-७-६६ पढ़ा। समाज के दायित्व प्राप्त व्यक्ति किस प्रकार पथ विचलित किये जाते है इसका सही चित्रण लगा। परन्तु नैतिकता और दाने के बीच द्वन्द (कहीं ग्राम बालायें..........न तो चैती ही सुन पाया, न ही उनके आकार प्रकार.......पाया।.......बहुत ही कोफ्त हुआ) (स्टेशन के भीतर........ "हजूर".........रूतबे का रूआब.........था) एक जज की वैयक्तिक जीवन में न तो सुलझा पाया और सम्वरण ही कर पाया इसीलिये कोफ्त हुआ" कही अधिक मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थ सत्य जँचा।

'अउर ई जौन—लाट साहब हवैं।' सामान्य जनता एवं सरकार की एक वृहत्तर शाखा के बीच इतना क्षोभ ही शायद भारतीय जनतन्त्र की व्यावहारिक असफलता का मूल प्रतीत होता है। "इन ग्रामीणों का सर्टिफिकेट था—'काश प्रत्येक सरकारी कर्मचारी इसके लिये लालायित होता'।

एस ई साहब और उनकी मोटर, इन्जीनियर, रूद्राक्षधारी नवयुवक ठेकेदार, अधेड ठेकेदार, गार्ड का एस ई की मोटर पहचान कर गाड़ी रोकना और स्टेशन पर एक जज द्वारा 'एक झटके में दोनों बहेलियों व उस चिड़िया को देखकर-मुस्कराते हुए मैंने राह ली' समाज को इस बीमारी एवं कमजोरी पर उपहास। इन सबसे समाज का दम घुट रहा है। यायद खंड "अ" उसकी इस घुटन को अपने आनन्द की नींव समझ

रहा है और "ब" अपनी अधिकार मर्यादा की रक्षा की चहारदीवारी सरकार के दोनों ही अंग किस भाँति अपना कर्तव्य पालन कर रहे हैं। Execvtive करती जाय Judiciary से क्या मतलब ? मुकदमा पेश होगा तब देखेगी। Legislature की नियमावली की पोथो से दोनों की Library पूर्ण होगी। विचार दीमक भी तो इस सृष्टि का सदस्य है। आखिरकार इस जनतन्त्र में भगवान ने उसे मुँह दिया है और भोजन का उसका नैसर्गिक अधिकार छीनना घोर पाप—

हे राम

भगवान बचाये।

सचमुच कहानी बड़ी अच्छी लगी।"

इस पत्र में पार्श्व में रेखांकन कर 'अ' व 'ब' लिखा गया है। इसी प्रकार यहाँ भी दिया जा रहा है।

पत्र लेखक की चिन्ता इस विषय से है कि न्यायपालिका समाज में फैली अनीतियों के प्रति स्वयमेव क्यों पहल नहीं करती। क्यों कार्यपालिका के कार्यों में, जिसे वह गलत समझती है, स्वयं हस्तक्षेप नहीं करती ? भारतवर्ष के संविधान ने न्यायपालिका को ऐसा कोई अधिकार नहीं दे रखा है। न्यायपालिका का कार्य न्याय करना है। इसके लिये दो पक्ष होने आवश्यक होते है। यदि न्यायपालिका स्वयंमेव हस्तक्षेप करने लगे तो वह अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण करेगी, भले ही एक न्यायाधीश रचनाकार होने पर अपनी रचनाओं में इन कुरीतियों, अनीतियों, दुर्व्यवस्थाओं आदि पर अपनी कलम चलाये और समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित करे।

इधर एक दशक से अधिक अवधि से जनहित वादों के माध्यम से उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों ने जनहित के मामलों में

हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया है जिसके बड़े सुखद नतीजे समाज के सामने आने लगे है। अब पत्र लेखक को (यदि वह जीवित है) तो यह सब देखकर सन्तोष होगा कि न्यायपालिका मूकदृष्टा मात्र बन कर नहीं रह सकती। परन्तु उसके सम्मुख किसी न किसी को तो वादी बन कर आना होगा और जनहित के मामलों को उठाना होगा।

मेरी एक कहानी "अमावस जोर और चाँदनी" की पाण्डुलिपि, हिन्दी साहित्य के पसिद्ध हास्य लेखक स्वर्गीय श्री जी पी श्रीवास्तव अपने साथ पढ़ने के लिये ले गये थे। इसके बाद क्या हुआ यह उन्हीं के शब्दों में—

"जिस जिन कहानी लेकर आया उसे एक किताब में रख दिया मगर किस किताब में यह मुझे याद न रहा। यह भी याद न रहा कि किताब में रखा या कहाँ रखा। तब से बराबर ढूँढता रहा। मगर कहानी न मिली। इसका मुझे कितना पाश्चाताप रहा कह नहीं सकता। आज संयोग से ढूँढते-ढूँढते मिल गयी। पढ़ते ही इतना फड़क उठा कि उसी वक्त इसके प्रकाशनार्थ सम्पादक साप्ताहिक हिन्दुस्तान Times of India press New Delhi को पत्र लिख बैठा जो इसके साथ है। बंगला में एक महिला का लिखा उपन्यास "एक दिन रात्रे है।" जिसके आधार पर "जागते रहो" फिल्म बनी है। उस फिल्म का यूरोप में इतना आदर हुआ कि उसकी प्रतिलिपियाँ १७ योरोपी भाषा में बनाई गई। आपको यह कहानी व्यंग में उद्देश्य के साथ उससे भी बढी चढी है। इस अनोखी सूझ पर आपको कोटिशः बधाई।

जी पी "श्रीवास्तव"

कहानियों के खोने और मिलने का सिलसिला मेरे साथ भी लगा रहा। अन्ततोगत्वा मैंने समस्त मिली कहानियों को प्रतिलिपियों तथा प्रकाशित रचनाओं की कतरनो को एक फाइल में लगा कर रख लिया।

कुछ तो खो ही गये। कहीं ये कहानियाँ अतीत के गर्भ में न खो जायें इस कारण इन्हें पुस्तकाकार दिया जा रहा है।

खबरें शीर्षक वाली कहानी से सम्बन्धित अखबार में छपी वह अखबार की कतरन भी मिली जिस पर यह कहानी रची गयी। बरसों बाद देखकर स्वयं सोचने लगा कि कैसे अचानक साधारण माध्यम भी रचना आधार बन बैठते हैं।

इस संग्रह के औचित्य के बारे में मुझे केवल इतना ही कहना है।

अंत में श्री विन्ध्यवासिनी प्रसाद त्रिपाठी का अत्यन्त आभारी हूं जिन्होंने मुझे कालेज पत्रिका में छपी कहानी की याद दिलायी। इसे मैंने कालेज मैगजीन से प्राप्त किया।

गणेश दत्त दूबे

अनुक्रम



टुकड़हारा

पड़ोस के प्रत्येक व्यक्ति को रोहिणी से सहानुभूति थी। उसका विवाहित जीवन निश्चय ही सुखमय न था। उसका पति, जिसका एक पैर लकड़ी का था, बहुत ही मोटा और तगड़ा था। जैसे वह पाटे पर कपड़ों को फींचता, उसी तरह वह रोहणी को पीटता था।

वह एक ताड़ी के ठेकेदार की लड़की थी। उसकी नगरपालिका की सीमा के बाहर दुकान थी। अपने एक मित्र की सहायता से ताड़ी की दुकान का लाइसेन्स प्राप्त कर उसने अपना पुश्तैनी कपड़ा धोने का पेशा, छोड़ दिया था, जिसकी अपेक्षा यह अधिक लाभकर था।

अपनी एक आँख के सिवा रोहिणी, कृशकाय, गोरी और सुन्दर थी। उस लंगड़े नान्हू से विवाह के पूर्व, वह अपने पिता के व्यवसाय की अमूल्य निधि थी। उसका गोरा, सुन्दर एवं कोमल कौमार्य पड़ोस के अनेक भले-बुरे चरित्रों को आकर्षित करता था। वह उनको ताड़ी बेचती थी। जब उसकी गोरी कलाइयों में खनकती चूड़ियों की स्वर लहरी के मध्य सेर के बाद सेर ताड़ी पीते हुए लोग उसके गदराते लावण्य के सम्बन्ध में

अस्पष्ट एवं असम्बद्ध भाषा बोलने लगते तो उसका पिता बड़ी चतुर से उसे, उनके चंगुल में पड़ने से दूर रखता।

नान्हू के पास दस गदहों की लादियों का सम्मानपूर्ण व्यवसाय थ ठेकेदार की दुकान पर उसने रोहिणी के प्रति आकर्षण अनुभव किया और एक दिन उसके पिता से विवाह का प्रस्ताव कर बैठा था, जो शीघ्र सम्पन्न हो गया था।

कुछ ही दिनों के उपरान्त वह पछताने लगा कि वह कितना था कि उसने उस दहेज विहीन, एकाक्षी और उसके मतानुसार, आव व्यवहारों वाली चुड़ैल को अपने गले बाँध लिया, जो ताड़ी के नशे साथ अपने प्रति आकर्षण भी उसके अन्तर्मन में गले तक उड़ेल बैठी थ वह अपने श्वसुर को अव्वल नम्बर का चार सौ बीस समझता था उसने अपनी लड़की को, उसके गले मढ़ने के लिए, उसके चुक्कड़ में ता तक ढ़ालने की अनुमति दे दी थी और वह ताड़ी से घुत उसके गुन ग लगा था।

विवाह ने नान्हू के स्वभाव में परिवर्तन ला दिया। अब वह प्र वस्तु पर जो उसके रास्ते में पड़ता, लानत फेरता। उसके मुख से नि न्तर अभद्र एवं असंस्कृत शब्द निकलते। घाट पर जाते और लौ समय गदहों को मुंगरों से पीटता। धुले कपड़ों से पाट पर पानी निचो हुए अपने ग्राहकों से घृणित, अनुचित, अनैतिक और निन्दनीय सम्ब स्थापित करता।

जब अपने लदे हुए गदहों के कारवाँ के साथ, वह अपनी बस्ती प्रवेश करता, तो रोहिणी को देखते ही उसके होठों से अश्लील भाषा

वह बाढ़ फूटती, जिसके साहित्य के सृजन का सामर्थ्य केवल उसमें था और पड़ोस में कोई भी उससे इस कला में होड़ नहीं लगा सकता था।

तनिक सी उत्तेजना पर वह रोहिणी का हाथ बाँधकर अपने तगड़े और स्वस्थ फेफड़ों की वायु से निकली हुई फटे बाँस की तरह परन्तु शक्तिशाली आवाज़ में गालियों की सबसे परिष्कृत शब्दावली सहित गदहों को मारने वाली मुगरी से इतना पीटता कि उसके अन्तर का तार-तार त्राहि-त्राहि कर उठता था। यद्यपि अनेक अवसरों पर रोहिणी ने उसके अपशब्दों और मारों का प्रतिवाद गालियों और मारों से प्रत्युत्तरात्मक प्रतिरोध किया था परन्तु सदैव उसकी कमजोर काया नान्हू की असभ्यता तथा नृशंसता के प्रवाह और कला के आगे नतमस्तक हो जाती थी।

रोहिणी को नान्हू के व्यवहार से अत्यधिक कष्ट होता। चार वर्ष बीत गये थे। उनको कोई सन्तान नहीं थी। उसका मातृत्व रह-रहकर उसके अन्तर को कुरेद उठता। नान्हू के सभ्यता के क्षणों में उसने प्रस्ताव कर अपनी और नान्हू की डाक्टरी जाँच करवायी थी। डाक्टरों ने बताया था कि नान्हू में ही खोट था कि उन्हें कोई सन्तान नहीं हो रहा था।

इन सब के बावजूद, रोहिणी की काया, अब भी उसकी ताड़ी के दुकान के प्रेमियों को सम्मोहित करने का सामर्थ्य रखती थी। वे गाहे बगाहे आते। वह उनसे हँस बोलकर जी हल्का कर लेती। आखिर उसकी भी तो भूख थी। उसकी भी तो आकांक्षायें थीं। वह कहाँ तक उस लंगड़े की प्रताड़नायें सहती।

एक दिन नान्हू ने रोहिणी को, अपने एक प्रशंसक से मुस्कान आदा प्रदान करते हुए देख लिया था। उस दिन उसे इस पाशविकता चीखते हुये पीटा था कि उसकी अन्तरात्मा ही विद्रोह कर उठी थी वह मारता जाता और चिल्लाता जाता था—"तूँ भिखमंगे को बेटो मैं उस दिन ही भर पाया जिस दिन तुम्हें देखा था। क्या तू सड़क टुकड़हारे को भी ब्याहने लायक थी ?"

उसके बाद उसने उसका सम्पूर्ण जीवन ही नर्क बना दिया था वह निरन्तर पीटने, कान उमेठने, अपशब्दों की बौछारों तथा मुँह थूकने तक के भय से, त्रस्त जीवन व्यतीत कर रही थी।

एक सुनहरी शाम, जब अपने धोबी घाट से असंस्कृत शब्दावली जोर-जोर से रियाज़ करते हुये नान्हू घर लौटा, तो रोहिणी को द्वार उस प्रतीक्षात्मक मुद्रा में खड़ी नहीं पाया जिसके लिये उसने उसे मुंगर के भय से बाध्य कर दिया था। इसने उसकी क्रोधाग्नि में घी का का किया था। उसने अपने गधों पर लानत फेरो और मुगरों की पुष्प व एवम गालियों के स्वस्ति पाठ सहित, उनके पीठ से लादी उतारते हु उनसे इस प्रकार अनुचित सम्बन्ध स्थापित किया जैसे वे पशु न होक मनुष्य हो।

इस पर भी जब रोहिणी बाहर नहीं आयी तो अपने सम्पूर्ण सामर्थ से पूर्ण तीव्र और तीखे स्वर में चिल्लाया—"ओ! टुकड़हारे को औलाद वेश्या""कहा मर गयी है ?"

परन्तु भीतर से कोई उत्तर नहीं आया।

इसने उसे और भी क्रोधित कर दिया। अपने मुंगरे को तलवार की तरह भाँजते हुए धमकाने की मुद्रा में, घर में प्रवेश किया। परन्तु लो! उसका समस्त रोष क्षण भर में काफूर हो गया। घर का सब माल मता गायब था। स्पष्ट था कि रोहिणी जिस वस्तु पर भी हाथ साफ कर सकी थी उसे बटोर कर चम्पत हो गयी थी।

—'जरूर उसके बाप की यह साजिश है।'—यह विचार आते ही अपने श्वसुर के प्रति और उसकी वंशावली के समस्त जीवित तथा मृत व्यक्तियों को, जिनकी उसे जानकारी थी, अश्लीलतम सम्बोधनों को लच्छेदार भाषा प्रयोग करते हुए, उसके घर पहुँचा।

नान्हू पर दृष्टि पड़ते ही, उसके श्वसुर ने क्रुद्ध हो उसे पकड़ कर इस तरह पीटा जैसे किसान खलिहान में बोझा पीटते हैं। अपनी वाणी की समस्त शक्ति से चिल्लाते हुए उसने नान्हू को सड़क पर ढकेलते हुए कहा—"भाग यहाँ से। मैंने रोहिणी की सगाई कर दी है और देख अगर उस तरफ आँख उठाकर देखा भी तो तेरी दूसरी टांग भी तोड़ दूँगा। गुण्डा कहीं का।" और उसने दरवाजा बन्द कर लिया।

वह अपनी दुखते हुए पीठ के साथ लौटा। रास्ते में समस्त पीड़ा और वितृष्णा को तिरोहित करने के लिए सेर के बाद सेर ताड़ी पिया और अपनी समस्त घृणा व्यक्त करने के लिए अपने सबसे असंस्कृत साहित्य में दोनों बाप बेटी पर लानत फेरी!

ग्राहकों ने उसे छोड़ दिया। घर की बची खुची पूंजी पुरवे के रास्ते बह गयी। अब वह निर्धन, भिखारी और रास्ते का टुकड़हारा था। अपने लकड़ी वाले पावों पर असामान्य रूप से भचकते हुए, अपने कटोरे के पैसों

को खनखनाते हुए पीड़ा और अनुभय भरे स्वरों में कहता—"बाबू
लंगड़े को दस पैसा दे दो तुम्हारे बच्चे लाख बरस जियेंगे।"

इन करुणा विगलित शब्दों को मुँह से निकालते निकालते ज
उसका मन थक जाता तो हारे हुए सैनिक की भांति निढ़ाल हो कि
दीवाल से टिककर बैठ जाता। उस समय जी चाहता था कि खुद क
नोचकर फेक दें, हाथों को तोड़ डालें, ज़बान काटकर कुत्तों के आगे डा
दें। आँखों से बहते आँसू, अन्तर को कचोटते हुए कहते—'मूर्ख क्या खो
था रोहिणी में ? क्या उसने तुम पर सर्वस्व न्यौछावर करने का प्रयत
नहीं किया था ? क्या उसकी इच्छा न थी कि उसका भी भरा पुरा हँसत
खेलता परिवार हो ? क्या तुमने उसे बुरे रास्तों पर चलने को विवश
नहीं किया ?'—इन प्रश्नों की बौछारों के आगे वह स्वयं में टूक टूक
होता करुणा और दया का पात्र बन जाता।

टुकड़ा रोशनी का

उसे देखते हो रचना ने अनुमान लगाया कि फिर उसे सफलता नहीं मिली। फिर भी वह परिणाम जानने को उत्सुक थो। मगर पति के हतोत्साह चेहरे को देख वह सीधे प्रश्न करने का साहस न कर सकी। उसने घुमा कर पूछा।

"क्या सिर दर्द कर रहा है ?"

"हाँ रचना।"

"लाओ दवा दूँ।"

इसके पूर्व कि वह उत्तर दे एक जोड़ी चरण बढ़े। साड़ो सरसरायी। चुड़ियों भरे हाथ खनक कर माधव के सिर को ओर आगे बढ़े। उसने मगर रचना के हाथों को बीच में हो रोक लिया। उसकी हथेली को अपने सीने पर रख अपनी हथेलो उस पर रख दी। उसका चेहरा सामने के श्रृङ्गारदान के आइने में प्रतिबिम्बित हो रहा था। उसको कुर्सी की पोठ से सटी रचना के मुख प्रतिबिम्बि में उसने चिन्ता पढ़ी थो। उसने केवल इतना कहा।

"रहने दो।"

रचना यूँ ही द्रवित सी खड़ी रही। उसने साहस कर पूछा।

"तुम फिर बहुत उदास हो माधव ?"

"हाँ रचना। आज फिर वही टका सा जवाब मिला।"

रचना कुछ क्षण बोली नहीं। वह इस उत्तर को पहले से जानती थी। उसने अपनी दाहिनी हथेली छुड़ाकर माधव के सिर के बालों में धीरे-धीरे उँगलियों से सहलाना प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु माधव अपने उत्तर से स्वयं अपमानित अनुभव कर रहा था। रचना सब समझ रही थी। उसने माधव को अपने शब्दों से सहारा दिया।

"तुम खामख्वाह चिन्ता करते हो। मैं कमा रही हूँ न। चला लेंगे गृहस्थी।"

इन शब्दों ने माधव के टूटते मन को कोई बल नहीं दिया। वह और हतप्रभ दीखने लगा। वह अपने को और तुच्छ अनुभव करने लगा। किसी अन्य व्यक्ति के इन शब्दों पर वह उबल पड़ता। परन्तु रचना उसका प्राण थी। वह अपने प्राणों को कष्ट नहीं दे सकता था। इसी कारण रचना के प्रतिबिम्बित आँखों में प्रश्न कर रह गया। उसने रचना की हथेली को फिर पकड़ कर अपने हृदय से लगा लिया, जैसे काँपते हृदय को बल देना चाहता हो। रचना की बाहें उसके वक्ष:स्थल पर फैल गयी थी। रचना उस पर कुछ झुक आयी थी और उसके कपोल माधव के गालों का स्पर्श कर रहे थे। उसने कुछ संभल कर रचना को समझाया।

"डेढ़ हजार रुपया तो तुम्हें मिलते हैं। पाँच सौ रुपये फ्लैट का भाड़ा। पाँच सौ रुपये राशन और दूध के खर्च। फिर शेष पाँच सौ रुपये में होगा क्या ? हमारे कपड़े, बच्चे की किताबें, फीस, कहाँ से आयेगी। यही चन्द दिन तुम्हारे हँसी-खुशी के दिन हैं। मैं इनको आर्थिक तनाव में ही मसल डालूँ। नहीं रचना। ऐसा नहीं हो सकता।"

"तो घबड़ाते क्यों हो ?"

"हाँ, हाँ मुझे घबड़ाना नहीं चाहिए।"—उसने रचना के हाथों के पृष्ठ प्रदेश को थपथपाया जैसे उसे ही सान्त्वना दे रहा हो।

"थोड़े दिनों की तो बात है। सब ठीक हो जायेगा।"

"हाँ रचना ! सब ठीक हो जायेगा।" उसने दुहरा दिया।

वे कुछ देर चुप रहे। शायद वाक्यों की तलाश कर रहे थे। माधव कुछ-कुछ सहज होता जा रहा था। रचना उसका ध्यान बाँटना चाहती थी।

"माधव !"—रचना ने कहा।

"हाँ रचना !"

"काफी पियोगे ?"

"काफी ?"

"हाँ ! बस एक, एक कप।"

"अच्छा लाओ।" उसने रचना के हाथों को मुक्त कर दिया।

रचना माधव के गालों को बहुत ही प्यार से थपथपा कर चली गयी। माधव उसके असीम स्नेह से अभिभूत हो रह गया। वह उठ कर कपड़े उतार मुँह हाथ धो चारपाई पर काफी की प्रतीक्षा करते हुए बैठ गया।

मिन्नी स्कूल से झोला लटकाये आयी। पापा को देख 'पापा', 'पापा' कहती बस्ता जमीन पर पटक, माधव की गोद में चढ़ गयी। माधव ने घड़ी देखा। चार बज रहे थे।

"आज बहुत देर तक पढ़ती रही मिन्नी !"

"हाँ पापा !"

"क्या पढ़ा ?"

"कहानी ।"

"और ?"

"और पहाड़ा भी।"

"अच्छा ?"

"हाँ पापा !"

"ओह मिन्नी तो बहुत पढ़ लिख गयी।"

"पापा-पापा।" मिन्नी ने माधव का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया।

"हाँ बेटी।"

"मैं इन्दिरा गाँधी बनूँगी।"

वह ठठा कर हँस पड़ा। छोटी मिन्नी बस वही जानती थी कि श्रीमती इन्दिरा गाँधी ऊँचे पद पर थीं ? क्या थीं वह नहीं समझती थी। उसने मिन्नी का माथा चूमा। मिन्नी अपनी उपलब्धि की कथा रचना को सुनाने रसोई घर की ओर भाग गयी।

माधव थोड़ी देर बाद मिन्नी के पहाड़े में उलझ गया। वह बड़ी होगी। इतनी फीस लगेगी। इतने कपड़े लगेंगे। फिर इसका ब्याह होगा। उस समय का पहाड़ा वह याद न कर सका। बड़ा विकट पहाड़ा था। रचना के डेढ़ हजार में अटता ही नहीं था।

रचना काफ़ी लाई। गरम-गरम भाप उठती हुई काफ़ी। उसने प्याला माधव को पकड़ाया। दूसरा प्याला स्वयं ले चारपाई पर बैठ गई। माधव ने दो सिप ली। मिन्नी के पहाड़ों का तनाव मोम की तरह घुलने लगा। चारपाई के दूसरे सिरे पर बैठी रचना उसे देख रही थी। गरम-गरम काफ़ी माधव को आराम पहुँचा रही थी। उसे सन्तोष मिल रहा था।

काफ़ी पीते-पीते अचानक माधव को कुछ स्मरण हो आया। उसका चेहरा चमक उठा। जैसे अन्धेरे में बरसों से कैद आदमी को रोशनी का एक टुकड़ा मिल जाय। उसकी पुतलियाँ प्रसन्नता से चमक उठीं।

"धुत् तेरे की।"—उसने कुछ इतमीनान में आते हुए अपनी जाँघ पर घूँसा मारा। जैसे अपनी स्मरण शक्ति को दोष दे रहा हो। वह पीछे की दीवाल से टिक कर कुछ पसर गया। वह अत्यन्त प्रसन्न था। जैसे सभी समस्यायें हल हो गयी हों। मिन्नी का पहाड़ा भी हल हो गया हो। रचना चकित हो उसे देख रही थी।

"क्या माधव ?" रचना ने उत्कण्ठित हो पूछा।

"वह अपना राघवन है न ?"

"हाँ ! हाँ।"

"अभी दो माह पूर्व, सरदार बल्लभ भाई पटेल कालेज, का मैनेजर हुआ है। वह मुझे अपने कालेज में रख लेगा।"

रचना प्रसन्नता से करीब-करीब चीख उठी।

"अच्छा ?"

"हाँ रचना।' यह बात कम्बख्त अब याद आयी जब कि हम लोग इतना दिन भर घुट लिए।"

माधव मुस्कराने लगा। उसके चेहरे का पीलापन तिरोहित हो गया था। मिन्नी दरवाजे पर खड़ी गौरैये की तरह चहक रही थी। उसने दौड़कर उसे गोद में ले लिया।

"हमारी मिन्नी कालेज जायेगी। खूब पढ़ेगी। डाक्टरनी बनेगी। जब हम बूढ़े ही खों खों खासेंगे तो यूँ सूई लगायेगी"–उसने डाक्टरनी का पूरा अभिनय कर डाला।

रचना खिलखिला उठी। माधव ने बड़े प्यार से मिन्नी के कपोलों का चुम्बन लिया। रचना माधव के सम्मुख एक प्रस्ताव बहुत दिनों से रखना चाहती थी। इस बेकारी में उसका मूड अक्सर खराब रहता था। उसका साहस नहीं होता था कि वह प्रस्ताव रखे। उसे यह अवसर उपयुक्त लगा।

"सुनते हो?"—उसने धीरे से कहा ऐसे-जैसे दूर कोयल अमराई में कूके।

"हाँ"—मिन्नी को प्यार करने में उलझे ही उसने कहा।

"चलो पिक्चर चले।"

"हाँ-हाँ चलो।" उसने उल्लसित मन से कहा।

"तो तैयार हो जाओ।"

"बिलकुल। एक मिनट में।"

वह मिन्नी को चारपाई पर बैठा बाथरूम की ओर चला गया। रचना शृङ्गारदान के सामने बाल खोलकर झाड़ने बैठ गयी। वह बहुत दिनों बाद घर आये इस रोशनी के टुकड़े को पकड़ कर रखने का प्रयत्न कर रही थी। वह इसे भरपूर भोग लेना चाहती थी। वह खुश थी। बहुत दिनों बाद यह खुशी मिली थी। उधर मिन्नी चारपाई पर बैठी तकिये को घोड़ा बना उछल रही थी।

खबरें

वे दोनों काफ़ी हाउस में घुसते ही नोटिस बोर्ड पढ़कर चौंक उठे। नोटिस बोर्ड पर लिखा था—

"मुख्य हाल आज रात को मिस मृणालिनी घोष और पार्टी के नृत्य प्रोग्राम के लिए रिजर्व है। मुख्य हाल के सभी टिकट बिक चुके हैं। ग्राहक कृपया संलग्न हाल में जायें। वहाँ आर्केस्ट्रा, नृत्य प्रोग्राम के समय (६ से ९ बजे शाम) के अतिरिक्त, उनके मनोरंजनार्थ बजता रहेगा।"

—'मृणालिनी घोष !'—हिमांशु ने ज़बान चटखारा जैसे उस पर कोई मीठी चीज आ गयी हो !—'यार हम लोग मजेदार प्रोग्राम मिस कर गये।'

हिमांशु सेक्रेटेरियेट में अपर डिवीजन कलर्क था। उसका साथी मनबोध एक फर्म का एजेन्ट था। मनबोध के काम, हिमांशु चुटकियाँ बजाते कराता था। मनबोध बदले में उसे काफ़ी हाउसों की सैर कराता और अनेक प्रकार के मनोरंजन कराता। मनबोध को इस मद के लिए फर्म से पैसा मिलता था। दोनों की गांठ से कुछ लगता नहीं था। दोस्ती इसी कारण गहरी होती जा रही थी।

मनबोध भी गौर से नोटिसबोर्ड देखता हाथ मलता रहा। "हाँ यार। मृणालिनी के नाच में तो जादू है। बड़ा अफ़सोस है।"

अचानक उसे कोई तरकीब सूझी। कदम बढ़ाते हुए बोला—"अच्छा इधर आ। कुछ तरकीब लगाता हूँ।"

वह लपकता हुआ मैनेजर के पास पहुँचा। मैनेजर ने उस दिन के लिए खास तौर पर अपना नया सर्ज का नीला सूट पहना था। उसकी लकदक पोशाक से उसका रुआब और भी बढ़ गया था। हिमांशु ने अपना मंतव्य कहा।

उसने कहा "बहुत तकदीरवान हैं आप। साइड हाल की मेजों के लिए भी हमें पैसा मिल रहा है। हमने अपने ग्राहकों की फरमाइश पर एक माइक इस हाल में भी फिट करा दिया है। नाच तो आप देख न सकेंगे। कम से कम गाना और पायल की झनकार तो सुन ही पावेंगे। निकालिये चालीस रूपये दो सीटों के फटाफट। वरना उससे भी हाथ धो बैठियेगा।"

हिमांशु मनबोध का मुंह ताकता रहा। मनबोध ने बिना झिझके सौ रुपये का एक नोट निकाला और मैनेजर के हाथ में रख कर बोला—

"—रखे रहो। नाश्ता पानी के बाद जो बचेगा इकट्ठे ले लेंगे।"

—'अच्छा! अच्छा!!' मैनेजर मुस्कराया—"बस जाकर टेबुल नम्बर पाँच की सीट नम्बर सात और आठ पर कब्जा कर लो।"

दोनों को बड़ा सन्तोष हुआ जैसे कुल पूँजी न हारे हों। थोड़ी सी ही हार हुई हो और बहुत सा खोया धन वापस आ गया हो। वे अपनी सीट पर बैठ गये। मनबोध ने सन्तोष की साँस ली। इस साइड हाल में भी

करीब चार सौ कुर्सियाँ डाल दी गयी थीं। बीस रुपया प्रति कुर्सी का देकर लोग बैठे थे। बराबर उनकी निगाहें भोपू की ओर उठतीं, जैसे न मालूम कब उसमें से परीजादी निकल पड़ेगी और शब्दों के माध्यम से थिरकेगी।

बेयरा आज खास तौर से टिपटाप था। कर्मचारी कुछ बढ़े नजर आ रहे थे। इतने बड़े हाल में आर्डर लेना और भोज्य पदार्थ पहुंचाना थोड़े आदमियों का काम नहीं था। बेयरा ने उनके सामने शीशे के दो चमचमाते गिलासों में पानी रखा। प्लेट में कायदे से मीनू पेश किया। उसमें एक सफेद कागज का टुकड़ा और पेंसिल भी थी। मीनू देखकर हिमांशु ने कागज पर दो पंक्तियों में नोट कर दिया—दो चिकेन, दो प्लेट शामी कबाब, चार वेजीटेबुल कटलेट, दो प्लेट फ्राइड फिश, आठ तन्दूरी, काफी।

मनबोध संतोष से हिमांशु को लिखते देखता रहा। जब हिमांशु की पेंसिल रुक गयी, तो बोला।

—'अरे बस इतना ही ?"

उसने मीनू हाथ में ले लिया। सरसरी निगाह दौड़ायी।

—'हुँह !" मनबोध ने पर्चा लेकर लिखा—कश्मीरी तीरंगा पुलाव, फ्रूट-क्रीम, डबल आमलेट, टोस्ट।

सूची देखकर बेयरा चकराया। पूछा—'कितने राउन्ड में।'

मनबोध इस बार बोला—'दो! पहले वेजीटेबुल कटलेट, आमलेट, टोस्ट और काफी लाना। फिर डेढ़ घंटे बाद बाकी सामान।'

—"बहुत अच्छा हुजूर।" बेयरा झुककर अदब दिखाकर चला गया।

हिमांशु और मनबोध ने एक नजर चारो तरफ घुमायी। कई तरह

के चेहरे और रंग-बिरंगे लोग बैठे थे। उनमें से कई को पहचानता था बैठे-बैठे अभिवादन हो गया। मगर शिष्ठतावश कोई बातचीत नहीं हुई बगल के लोगों की बस साँय साँय की आवाज सुनायी दे रही थी।

मनबोध ने पाकेट से सिगरेट का पैकेट निकाला और उसका फ्लै खोलकर हिमांशु की ओर बढ़ा दिया। हिमांशु की आखें चमकीं। भारत वर्ष में मिलने वाला यह सबसे बढ़ियाँ सिगरेट था। हिमांशु ने एव निकाला। ब्रांड का नाम पढ़ा और होठों से लगाकर जलाये जाने क इंतजार करता रहा। मनबोध जलाने का उपक्रम कर रहा था। उसने पहले हिमांशु का सिगरेट जलाया फिर दोनों हाथों की अंजुलि का आड़ कर अपना सिगरेट जलाया और तीली राखदान में फेंक दी।

दो कश लेने के बाद मेज़ पर पड़े अखबार पर हिमांशु की नजर पड़ी। उसने खोला। पहले पन्ने को पलटते ही बोल उठा—"देख मनबोध क्या चटपटी खबरें आज छपी हैं।"

—"क्या ?" मनबोध ने उसमें रुचि प्रदर्शित करते हुए पूछा। हिमांशु पढ़ने लगा—"औरत ने डाकू को मार डाला। लड़की लड़के को भगा ले गयी। मर्द को औरतों ने लूटा।"

हिमांशु ने कुछ खबरों का शीर्षक सुना दिया।

—"अच्छा! सुनाओ। सुनाओ। पूरी खबर क्या है।" मनबोध उत्सुकसा से बोला।

हिमांशु पढ़ने लगा। "एक वर्मी औरत ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए एक हथियार बन्द डाकू को उसी के छुरे से मार डाला। एक दिन एक डाकू उस औरत के घर में घुस आया। उस वक्त वह अकेली थी।

डाकू शराब के नशे में था। उसने कमरे में जाकर वस्त्र उतार देने का हुक्म दिया।

औरत ने बड़ी चालाकी से काम लिया। वह चुपचाप कमरे में जाकर यह जताने लगी कि वह उसके हुक्म का पालन कर रही है। ज्यों हीं डाकू उसके पास आया, उसने उसका छुरा छीन कर, डाकू को गिरा दिया और मार डाला।'

मनबोध बोला—'वाह बड़ी बहादुर औरत है।"

हिमांशु ने कहा—"लिखा है कि इसी कारण लोग उसे वीरांगना कह कर पुकारते हैं।" दो क्षण रूककर उसी क्रम में उसने कहा—"और यह दूसरी खबर तो देखो। बहुत मजेदार है।"

—'क्या है ?' मनबोध ने बड़े चाव से पूछा।

हिमांशु पढ़ने लगा। यह सिसिली की खबर है। सिसिली का यह पुराना रिवाज है कि यदि कोई मर्द किसी औरत से शादी करना चाहता है और परिस्थितियाँ उसके विपरीत होती हैं तो वह उस औरत का अपहरण कर लेता है तथा उससे समझौता कर लेता है, लेकिन सिसिली की एक कुमारी ने इस रिवाज को आधुनिक रूप दिया। उसने एक युवक का अपहरण कर लिया क्योंकि उसे उस युवक से विवाह करने में अड़चन हो रही थी। उसने उसे एक सप्ताह तक कैद रखा, जब तक कि विवाह के कागजात पर हस्ताक्षर नहीं हो गये। कानून की निगाह में युवक अभी नाबालिग है। इस कारण कानून ने उक्त कुमारी पर यह आरोप लगाया है कि उसने एक नाबालिग लड़के को घर से उड़ाया है।

—'वाह बड़ी मजेदार ख़बर है।'—मनबोध बोला।

बेयरा तब तक ट्रे में पहली राउन्ड का सामान ले आया। वह मेज पर प्लेटें, काँटे, छुरियाँ, नमक और मिर्चदानियाँ लगा गया। खाने की लज़ीज़ सुगन्ध उठने लगी। हिमांशु ने पहले प्लेटों की ओर देखा, फिर मनबोध की ओर याचक दृष्टि से देखता बोला—"क्या तीसरी खबर भी पढ़ूं?"

—"मारो गोली! क्या रखा है उसमें? औरतें तो हमेशा मर्दों को लूटती ही रहती हैं। किसी औरत ने किसी मर्द को धमका कर लूट लिया होगा। क्या फर्क पड़ता है?"—मनबोध ने हिमांशु से कहा।

हिमांशु ने अखबार मेज़ के नीचे तहकर डाल दिया। काँटे, छुरियां उन्होंने सम्भाल लीं और खाने में जुट गये। आमलेट का एक टुकड़ा मुह में डालने के बाद निगलकर हिमांशु थोड़ी देर रुका, फिर मनबोध की ओर आँखों में चमक-सा भरता हुआ बोला।

"मृणालिनी का आजकल तो बहुत नाम है।"

—"नाम?" मनबोध ने कड़कते हुए कहा। वह मृणालिनी को इस अल्प प्रशंसा से सन्तुष्ट नहीं था। 'मियाँ वह काशी के नर्तकों के एक प्रसिद्ध घराने की है। वड़े-बड़े तबलावादक साथ संगत करने से घबराते हैं। सुनना अभी उसके पाँवों की थिरकन की आवाज और तबले की संगत। दाँतों तले उँगली दबा लोगे।'

काफ़ी का दौर आते-आते माइक में से आवाज आयी—'भाइयों और बहनों! आज हमें आप लोगों का स्वागत करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। कार्यक्रम दस मिनट देर से प्रारम्भ हो रहा है, इसके लिए मुझे

खेद है। अधिक समय न लेकर कार्यक्रम प्रारम्भ हो रहा है। पहले कुमारी मृणालिनो घोष शास्त्रीय संगीत पर आधारित नृत्य प्रस्तुत करेंगी फिर लोकनृत्य और बाद में कथाकली, भरतनाट्यम् तथा मणिपुरी के नमूने भी पेश करेंगी।'

कार्यक्रम मुख्य हाल में प्रारम्भ हो गया था। टेबुल पर बैठे सब कल्पना में ही मृणालिनो के नृत्य का आनन्द लेने लगे। तबले की थाप की कोमलता और पद की थिरकन का आभास माइक में से निकलती आवाज में से हो रहा था। कुछ तो चुटकी बजा रहे थे। कुछ सिर हिला रहे थे। कुछ की कमर ही सीट पर हौले-हौले बल खा रही थी। अजीब समा थी। इस हाल वाले मस्त थे। हर आदमी के होठों पर यही अफसोस था कि मृणालिनी घोष को सशरीर देखने का सौभाय उन्हें प्राप्त नहीं हो रहा था।

डेढ़ घण्टा गुजर गया। बेयरा दूसरा दौर भी देकर चला गया। हिमांशु और मनबोध की सन्तुष्टि का दूसरा ही मापदण्ड था। खाते-खाते मनबोध बोला—'यार, यह मजा मेन हाल वाले कहाँ पाते होंगे। यहाँ खाने नाश्ते का दौर भी चल रहा है और नाच का जायका भी ले रहे हैं।"

'हाँ, दोस्त!' 'बून इन डिसजाइज' इसी को तो कहते हैं। न मुख्य हाल का टिकट हम मिस करते, न हमें] यह मजा मिलता।' हिमांशु ने लकित हो चिकेन को एक बोटी काट कर अपने प्लेट में डालते हुए कहा।

मनबोध उसे देखते हुए कुछ सोचता हुआ मगन हो रहा था। मृ
हाल में शोर गुल होने लगा था।

मैनेजर माइक पर बोल रहा था 'कृपया आप लोग शान्त हो जा
मृणालिनी घोष अब आप के सम्मुख आपका मनपसन्द नृत्य प्र
करेंगी।'

—'ये लोग न जाने क्यों शोर कर रहे हैं?'—मनबोला बोला।

इस शोर गुल से हिमांशु नाराज हो गया था। उसका मजा
किरा हो रहा था। वह बड़बड़ाया—"सिर्फ बदतमीजी है। ये लोग जा
वानते कुछ हैं नहीं। चार आदमियों के बीच बैठने तक की तमीज नह
और चले आते हैं नृत्य देखने।'

पुनः नृत्य प्रारम्भ हो गया था। बेयरा पूछ गया—'क्या कुछ
चाहिये? मनबोध ने हिमांशु की ओर देखा। हिमांशु ने सिर हिला दि
खूब ठूसकर खाने से उसका पेट चर्रा रहा था।

—'बस दो पैकेट सिगरेट, बारह बीड़े पान देकर मैनेजर से
बनवा कर माँग लाओ।'—मनबोध ने उसे निर्देश दिया।

बेयरा चला गया। थोड़ी देर में एक तस्तरी में पान, सिगरेट
बिल रख कर लाया। हिमांशु ने देखा। बिल देख कर उसकी रूह ही
गयी। तीन सौ चौरासी रुपये तिरसठ पैसे तीन घण्टे में खर्च हो गये
मनबोधने तीन सौ के नोट प्लेट मे रखेने। बेयरा लेकर चला गया। थ
देर में वाकी पैसे ले कर आया है। मगर मनबोध के चेहरे पर शि
तक न आयीं। उसने प्लेट में दो रुपये बेयरे के टिप के छोड़कर बाकी
में रख लिए।

इस हाल के लोग मगन थे। थोड़ी देर में मुख्य हाल में कुर्सियाँ पट-क जाने, तालियाँ पीटने व जूते घिसने की आवाज आयी। लोग चिल्ला रहे थे—'बन्द करो यह बेहूदा तिक्-तिक्, धिन-धिन। हम कोई ऐसा नाच देखना चाहते हैं जो सबकी समझ में आवे।'

मैनेजर सबको समझा रहा था। मगर जनता चिल्ला रही थी। उसने दर्शकों की मांग को पूरा करने में असमर्थता प्रगट की तो दर्शक कुर्सियाँ तोड़ते हाल के बाहर निकल आये।

हिमांशु और मनबोध दंगे से बचने के लिए चुपके से बाहर खिसक आये थे। उन्हें सबकी बातें सुनकर आश्चर्य हुआ। वे कह रहे थे—लूट लिया काफी हाउस वालों ने। यह भी कोई नाच है। तबले की तक्-तक् धिन्-धिन् पर पाँव चलाती है। न कमरे में लोच है न आँखों में मटक है। इससे अच्छा तो शहर की मंजूषा बाई नाचती है। वह समा बाँधती है कि लोग दंग रह जाते हैं।'

वे दोनों टैक्सी में चले जा रहे थे। हिमांशु दर्शकों पर गुस्सा हो रहा था कि कमबख्तों ने पूरा मजा नहीं लेने दिया। हिमांशु के दरवाजे पर गाड़ी रुकी। मनबोध ने हिमांशु से कहा—'यार कल हमारा काम करा देना।'

'चिन्ता मत करो ! दफ्तर पहुँच कर पहला काम वही करूँगा।'

मनबोध हँसता हुआ अभिवादन कर आगे बढ़ गया।



ब्रिज के खिलाड़ी

सिर के ऊपर पंखा उमस भरी हवा को घुमड़ रहा था ! चिपचि
हुए शरीर को मशीनी राहत मिल रही थी। श्रीमती विश्वास और उ
पति पार्टनर थे। उधर विपक्ष में सठियाया वकील माथुर अपने से अ
उमर के मजिस्ट्रेट गुप्ता के साथ था। चूँकि गुप्ता से दूनी आयु का मा
था इस कारण वह उसका आदर करता था। यद्यपि न्यायालय में मा
गुप्ता की प्रत्येक कृपादृष्टि के लिए चाटुकारितापूर्ण लच्छेदार बातें क
मगर ब्रिज टेबुल पर वह उस पर हावी रहता।

गुप्ता ने पत्ते बाटे। पत्ते हाथ में फैलाकर देखा। तर्जनी और मध्य
बीच सुलगती सिगरेट की कश ली। धुएँ को लच्छों में बाहर किया।
बोला—'वन नो ट्रम्प।' श्रीमती विश्वास ने कहा—'पास'। माथुर
कहा–'थ्री नो ट्रम्प' जिसे विश्वास ने 'डबल' कर दिया। गुप्ता और श्री
विश्वास ने पास कर दिया। माथुर ताव खाये बैठा था। बोला
'रीडबल'। विश्वास, श्रीमती विश्वास और गुप्ता 'पास' कर गये। '
बदले गये। गुप्ता के पत्तों को देखकर माथुर के तेवर चढ़ गये। श्रीम

विश्वास ने चिड़ी का दहला चल दिया था। माथुर के पत्ते मेज पर बिछा दिये गये थे।

'यह क्या काल दिया पार्टनर' माथुर बिफरता हुआ-सा गुप्ता को पत्ते लौटाता हुआ बोला।

—'ठीक ही तो दिया। साढ़े तीन ट्रिक्स थीं।'—गुप्ता ने कहा।—'अगर वन नो ट्रम्प नहीं कहता तो आप को कैसे पता चलता कि मेरे पास साढ़े तीन ट्रिक्स हैं।'

गुप्ता का यह उत्तर माथुर को बुरा लगा। 'ऐसे नहीं खेला जाता ब्रिज। कहाँ से सीखा है यह काल देना। तुम्हारे बस का 'ब्रिज' नहीं है।' माथुर ने अपना मुँह बिगाड़ सा लिया था।

गुप्ता का मुँह लाल हो गया था। बोला—'वकील साहब मैं यहाँ ज़लील होने नहीं आया हूँ। आप ने ही मेरे घर पर आदमी भेजा था कि चौथा आदमी नहीं है आ जाओ। आपकी इस तरह की बातों का आदी नहीं हूँ। कई बार मना कर चुका हूँ, पर आप मानते ही नहीं। मैं कल से क्लब नहीं आऊँगा। यह रबर समाप्त हो जाय तो चला जाऊँगा।'—उसके तर्क ने एक बार और जोर मारा। वह उसी वेग में कह गया—'आपने खुद गलत काल दिया। क्यों थ्री नो ट्रम्प पर कूद गये? क्या था आपके हाथ में?'

—'हुकुम के सात पत्ते और चिड़ी में एक चेक। तुम्हारे पास कम से कम तीन पत्ते स्पेड के होने चाहिये थे। इससे हमारे हाथ से पाँच हाथ बनते।'

—'हुंह !' गुप्ता ने घृणा से कहा—'स्पेड के सात पत्ते। वह भी दहले से नीचे।'

—'कौन जानता था कि एक बीबी एवं दुग्गी तिग्गी पर नो ट्रम्प बोलोगे।'

—'खैर हो गया। मैं ही गलती पर सही। यह रबर खत्म हो जाय तो नहीं खेलूँगा। कल से मुझे इस टेबुल पर देख लेना तो मर्द का बच्चा न समझना।'—गुप्ता कड़क कर बोला।

माथुर, गुप्ता की खसगो समझ कर चुप रह गया। गुप्ता मुंह फुलाये खेलता रहा। थ्री नो ट्रम्प बना नहीं। चौदह सौ प्वाइण्ट जुर्माना देना पड़ा। श्रीमती विश्वास ने प्वाइण्ट अपने हिसाब में लिख लिये।

विश्वास, गुप्ता के पक्ष को बल देते हुए खेल समाप्त होने पर बोले। 'ठीक ही तो कहते हैं गुप्ताजी। आप ने खुद गलत काल दिया था। एक ही ट्रिक तो थी। क्या जरूरत थी, 'थ्री नो ट्रम्प' करने की, चुप रहते।'

माथुर ने कोई जबाब नहीं दिया। बोला—'खैर छोड़िये। आगे का खेल खेलिये।'

गुप्ता अन्तिम चेतावनी दे चुका था ? इस कारण चुप रहा। शेष खेल में चुप्पी छायी रही। सिर्फ ब्रिज के काल होते रहे। रबर समाप्त होने पर हिसाब हुआ तो विश्वास युगल बत्तीस प्वाइण्ट जीत गया था। आठ रुपये की हारजीत सिर्फ एक रबर में हुई थी। गुप्ता और माथुर ने पैसे अदा किये।

माथुर कुछ सोच रहा था। शायद अपने व्यवहार पर पश्चाताप कर रहा था। सब चलने को उद्यत हुए, तो माथुर घूमकर गुप्ता के पास आया और कहा—'गुप्ताजी क्षमा करियेगा मैंने बहुत ही कड़ी बात कह दी। मुझे बहुत ही अफसोस हो रहा है।'

'पहले तो भरी सभा में चपत मारिये और फिर माफी माँगिये। खूब रही आपकी।'

'भरी सभा में क्षमा भी तो माँग रहा हूँ।

गुप्ता कुछ कहने वाला था। श्रीमती विश्वास ने बीच में ही गुप्ता से कहा—'अरे गुप्ताजी क्या लगाये हुए हैं। माथुर साहब वृद्ध आदमी हैं। इनकी बातों का बुरा नहीं मानना चाहिये। ब्रिज में तो पोस्टमार्टम होता ही है।'

'मैं कुछ कह थोड़े ही रहा हूँ, श्रीमती विश्वास! बात तो उसी जगह समाप्त हो गयी।'—गुप्ता नें कहा।

'शाबास! यह हुई बात।' विश्वास ने गुप्ता की पीठ ठोकते हुवे कहा।

सब लोग क्लब से बाहर सड़क पर चलने लगे। चौरस्ते पर चारों को अलग होना था। विश्वास दम्पत्ति दोनों को अभिवादन कर चले गये। माथुर ने गुप्ता से फिर क्षमा याचना की—'आपने माफ कर दिया न गुप्ता जी।'

'छोड़िये वकील साहब! जो हो गया सो हो गया।'

माथुर ने समझ लिया गुप्ता ने माफ कर दिया हैं। वह मन ही मन अफसोस करता हुआ चला गया। गुप्ता अपने पांव घर की ओर बढ़ते

हुए मन ही मन प्रतिज्ञा कर रहा था—'ब्रिज अब कभी नहीं खेलूँगा। ही माथुर आकर दस बार नाक रगड़ेगा, तब भी नहीं, कभी नहीं।'

घर पर द्वार खटखटाया तो पत्नी ने द्वार खोलते हुए प्रसन्न हो पूछा—'बड़ी जल्दी आये ?'

'हाँ ! आज जल्दी खत्म हो गया।' पत्नी को खुश देखकर गु मुस्कराया। वह उसे बराबर चिढ़ाता आया था। उसकी पत्नी की, उ ब्रिज खेलने की आदत से चिढ़ती थी। दस-दस बजे और कभी-कभी ग्यारह बजे रात तक उसे इन्तजार करना पड़ता था।

पत्नी के मुख पर खेलती हुई प्रसन्नता देखकर गुप्ता के मन विषाद पिघल गया था। उसने पत्नी के साथ खाना खाया और लेटे-लेटे वे देर तक बातें करते रहे। उसके सो जाने पर गुप्ता का देर तक जागता हुआ सोचता रहा। माथुर न मालूम अपने को समझता है। कहता तो है कि चालीस साल से ब्रिज खेल रहा हूँ। म बिल्कुल जुआ बना देता है। 'हुँह। जुआड़ी कहीं का।' देर तक सोचता रहा, झुंझलाता रहा। जब आँखें दुखने लगीं तो करवट ब कर सो गया।

सुबह, गुप्ता गम्भीर था। बदला-बदला सा था। परन्तु हृदय में अनजानी प्रसन्नता विद्यमान थी। क्यों ? कारण यह था कि पिछ रात उसने क्लब से शीघ्र लौटकर अपनी पत्नी को प्रसन्नता दी थ वह सोचता था कि चलो अच्छा ही हुआ। अब श्रीमती जी खफा न होंगी। काफी रात तक उनको बैठना तो न पड़ेगा। इस विचार

उसके हृदय में माथुर के प्रति क्रोध, को एक आभार के रूप में परिवर्तित कर दिया था।

कचहरी गया तो गुप्ता एक बदला हुआ आदमी था। आज उसको प्रदिदिन की चुलबुलाहट मौजूद नहीं थी। पहला मुकदमा चोरी का था। माथुर उसमें अभियुक्त का वकील था। वह आया और आँखें नीची किये काम करने लगा जैसे उस पर घड़ों पानी पड़ा हो। वह अपनी शहादत समाप्त कर बहस करने लगा '.....हुजुर इन सब कारणों से साफ जाहिर है कि मुल्जिमों ने चोरी नहीं की। अतएव रिहा होने योग्य है।'

गुप्ता आज कुछ फुर्तीला हो गया था। बहस सुनने के बाद तुरन्त फैसला लिखाने लगा। स्टोनोटाइपिस्ट लिखता गया। उसने अपराधियों को छोड़ दिया था। माथुर ने सोचा—'तो क्या इस पर कल की बातों का कुछ असर नहीं हुआ। अजीब इंसान है। बिल्कुल देवता जैसा।' उसे अपने पक्ष में फैसले की आशा नहीं थी। वह बिल्कुल हताश था।

शाम हुई। गुप्ता के मन में एक ख्याल गूँजने लगा। अब शाम का समय कैसे बीतेगा? सात बजे से दस बजे रात तक क्या करूँगा? घूमूं? कहा तक? अकेले सड़क पर टहलना तो पागलपन है। एक अव्यक्त आकांक्षा मन में उत्पन्न हो उठती थी। माथुर इस समय आ जाता तो उसे वास्तव में माफ कर देता तथा यह दिखाने के लिए कि मैंने उसे माफ कर दिया है साथ चला चलता। मगर उसने अपनी बहकती इच्छाओं को रोका। 'नहीं! नहीं! यह ठीक नहीं है। जब कसम खा ली, तो उसका पालन करना ही चाहिये। ठीक है, हजार कोई एँड़ी रगड़ेगा टस से मस नहीं होऊँगा। इसमें अपना ही तो फायदा है। इस समय में

कोई लाभ का काम कर लूँगा। पत्नी भी खुश रहेगी। ब्रिज से क्या फायदा ? व्यर्थ की चौं-चौं। पैसे की हानि तथा अकारण लड़ाई। वह बाहर बरामदे में कुर्सी डाले यही सोचता रहा। मगर रह-रह कर आंखे फाटक की ओर घूम जाती थी।

माथुर रिक्शा लेकर आया। उतरा तथा सामने की कुर्सी पर बैठा। बोला—'चलो।'

'कहाँ ?'

'ब्रिज खेलने।'

'वह तो कल ही कह दिया था कि अब आइन्दा ब्रिज नहीं खेलूंगा।'

'अरे भाई माफी तो माँग ली थी। क्या यही कल कहा था कि माफ कर दिया ?'

गुप्ता चुप बैठा रहा। उसका मन कह रहा था कि इसमें क्या लगा है ? ब्रिज में तो पोस्टमार्टम होता ही है। ऐसी भी क्या कसम ? जब माथुर ने माफी माँग ली तो कसम भी वही खत्म हो गयी।

माथुर खड़ा हो गया। 'चलो ! चलो ! थोड़ी-थोड़ी बात के लिए गुस्सा नहीं करते।' उसने गुप्ता को हाथ पकड़ कर उठाया। गुप्ता कसमसा कर उठा और माथुर के बगल में रिक्शे में बैठ गया। फिर वह और माथुर पार्टनर थे। फिर वही वन स्पेड, टू क्लब्स और थ्री नो ट्रम्प काल होते रहे। आपस में नुक्ता-चीनी होती रही। एक बार में तो श्रीमती विश्वास और विश्वास एक दूसरे पर खूब बिगड़े। मगर खेल खत्म होने पर सब समाप्त। जैसे वह सिगरेट का धुँआ हो। पंखे की हवा में घुमड़ कर विलीन हो जाने वाला।

गुप्ता उस दिन ग्यारह बजे लौटा था। घर की ओर पाँव बढ़ाते सोचने लगा—'ओह ! फिर सुनन्दा परेशान होगी। अकेली इन्तजार करती होगी। कितना तकलीफ देता हूँ उसे।' किवाड़ खटखटाया। श्रीमती गुप्ता ने दरवाजा खोला—'आज बहुत देर कर दी।'

—'हाँ रबर खिंच गया था।'—गुप्ता ने अपराधी की तरह कहा।

—'जरा जल्दी आया करो। देखो सब बच्चे सो गये हैं।' उसने कृत्रिम क्रोध से कहा, पर होठों पर मुस्कराहट छिटकी थी।

—हाँ ! हाँ !' गुप्ता ने सुनन्दा को मनाने के स्वर में कहा। 'मैं कितना बुरा आदमी हूँ। तुमको कष्ट देता हूँ और तुम हँसकर टाल देती हो।

—'छोड़ो भी। जल्दी कपड़े उतारो। खाना ठण्डा हो रहा है।'

मगर दिन जाते रहे। ग्यारह बजते रहे। सुनन्दा कुढ़ती रही। माथुर और गुप्ता झगड़ते रहे। पंखा सिर पर घूमता रहा। सिगरेट का धुँआ घुमड़ता रहा।

●

अस्तित्वहीन

मैं जेब में भरे हुए रिवाल्वर को छूता हुआ बड़ी बेचैनी से अप बारजे पर घूम रहा हूँ। मुझे बहुत ही क्रोध आ रहा है। कल 'राम' औ 'रहमान', साबरमती के शान्तिमय वातावरण में भी हैवान बन गये वे मजहबी लुआठे से घरों में आग लगाते रहे। किसी घर के मुखिय को छीन लिया। किसी की गोद सूनीकर दी। किसी के मांग के सिन्दू को पोंछ डाला। फिर भी 'राम' ने मूँछ पर ताव देकर कहा था—'मैं आज पांच रहमानों को जहन्नुम भेज दिया।' 'रहमान' वहीं ताल ठोंकक कहता—'जा-जा तेरे जैसे कई 'राम' मेरी चाकू की नोक पर दोज़ख़ क आग में झोंक दिये गये।' मगर दूर इनके पागलपन पर आंसू बहात डाक्टर दिन रात घायलों की प्राण रक्षा में जुटा रहा।

मेरे बारजे के नीचे से कई 'राम', 'रहमान', ईसा 'बुद्ध' निकल गये धर्म के रूप में कोई न कोई किसी न किसी के शरीर में अवश्य विद्यमा है। लेकिन ये मानव कितने सिरफिरे और अजीब लग रहे हैं। जव खगो के परिप्रेक्ष्य में इन्हें देखता हूँ तो ये कितने अस्तित्वहीन लगते हैं।

खगोलज्ञों का कहना है कि क्वासर तारे पृथ्वी से इतनो दूर हैं कि इनके प्रकाश के पृथ्वी तक पहुँचने में कई करोड़ प्रकाश वर्ष लग जाते हैं जबकि प्रकाश एक सेकण्ड में एक लाख छियासी हजार मील की गति से चलता है। नजदीक का क्वासर तारा पृथ्वी से छः करोड़ प्रकाश वर्ष दूर है। प्रकाश वर्ष वह दूरी है जिसे तय करने में प्रकाश को एक वर्ष लगता है। इसके अनुसार गणना करने पर बुद्धि चकरा जाती है। कई लाइनें अकों से भर जाती हैं। यह ब्रह्माण्ड कितना बड़ा है। इसमें तो मानव कितना अस्तित्वहीन लगता है।

यह अस्तित्वहीन मानव बहुत ही महत्वाकांक्षी है। अभी कुछ दिन पूर्व चन्द्रमा पर अपने चरण रख चला आया। उसके और शौर्य पर मन में आदर भर गया। उन महत्वाकांक्षो मानवों के चरणों को चूम लेने को जो चाह रहा है। परन्तु ये पागल 'राम' और 'रहमान' किस महत्वा-कांक्षा की पूर्ति में जुटे हैं। ये नहीं जानते कि ये एक ही पिता के जुड़वे बेटे हैं। ये अपने अस्तित्व से अनभिज्ञ हैं। अपने को सर्वशक्तिमान समझ रहे हैं। ये नहीं जानते कि मेरी रिवाल्वरकी लिबलिबी दबने पर उनके भीतर का तूफान शान्त हो जायेगा। तब उसके अन्तिम यात्रा के लिए चार कन्धों की आवश्यकता पड़ेगी।

जीवित मानव कितना खुराफाती होता है। मृत मानव कितना असहाय होता है। उसे चार कन्धों की जरूरत पड़ती है। जीवितों में वे धन्य हैं, जो अपने समान अन्य जीवों के कल्याणार्थ किसी न किसी महत्वाकांक्षा की पूर्ति में जुटे हैं। लेकिन अधिकांश को भाई-भाई में फर्क

कर जूझते देख रहा हूँ। मुझे इन सब पागलों पर बहुत गुस्सा आ रहा। ये सब कितने कमजोर हैं। मेरे रिवाल्वर को देख ये अवश्य डर जायें केवल अपने को भीड़ में पाकर ये बहादुर बनते हैं, हत्याएँ करते हैं, दू का धन लूट लेते हैं। मुझे इन पर तरस आ रहा है।

भीड़ की इस मनोवृत्ति के ऊपर मुझे अखिलेश की याद आ गयी। 'रामों' में भी भेदभाव करता है। 'संघे शक्तिः कलियुगे' के सिद्धान्त उसने अपनी जाति का गुट बना रखा हैं। अपने इस जातीय गुट के का अपने को बड़ा शैः समझता है। गुब्बारे की तरह फूल गया है। इसी के बल पर बिना किसी योग्यता के बड़ा से बड़ा पद हथिया लेना चाह है। एक ही गोली में तो उसका गुब्बारा पिचक जायगा। दूसरे आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

अखिलेश, मगर है बहुत ही डरपोक। अपने सगे भाई से पत्ते तरह काँपता था। उससे किसी जमीन के बारे में झगड़ा था। उसे परा करने के लिए अखिलेश ने पंचानन का सहारा लिया। पंचानन उस स एक अधिकारी था। अखिलेश को सहायता प्रदान करने में समर्थ थ अखिलेशका भाई हार गया। अखिलेश ने पंचानन की कृतज्ञ स्वीकार की।

लेकिन पंचानन संयोगवश अखिलेश का एक सहयोगी हो गया पंचानन उसकी जाति के गुट का नहीं है। वह दूसरी जातिका है। पंचा से कहीं अधिक समर्थ और बुद्धिमान हैं। इसी कारण अखिलेश, पंचा का शत्रु हो गया है। मुझे अखिलेश को इस बुद्धि पर तरस जाता है।

अखिलेश रोज मन्दिर में खड़ा ही मन्त्र बुदबुदाता है। उसमें और धर्मान्ध राम और रहमान में मैं कोई अन्तर नहीं पाता। जिस धर्म में जाति और धर्म के आधार पर मानव-मानव में भेदभाव हो, और दूसरे धर्म के प्रति असहिष्णुता प्रदर्शित हो वह कैसा धर्म ? वह कैसी आराधना ? यही प्रश्न एक दिन अखिलेश के सीने पर रिवाल्वर रखकर पूछना चाहता हूँ। रिवाल्वर देख डर जायेगा। गिड़गिड़ाने लगेगा। उसे अपनी ज़िन्दगी बहुत प्यारी है।

मैं अखिलेश को अस्तित्वहीन नहीं बनाना चाहता। केवल उसे मानवता, सहअस्तित्व तथा उस महत्त्वाकांक्षी के मूल्य को समझाना चाहता हूँ जिससे जनकल्याण हो। वह यह नहीं जनता कि गुटवादी महत्त्वाकांक्षा के बल पर बिना योग्यता के ऊंचे पदों पर बैठ वह जनता का कितना अकल्याण कर रहा है। इन पापों की उसके मन्त्र-जप नहीं धो सकते।

कितनी अजीब बात है कि कुछ लोग बिना योग्यता के महत्त्वाकांक्षी है और कुछ योग्यता रखते हुए भी मृत सा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। मेरे सामने रहने वाला वनस्पति शास्त्री मुझे बिल्कुल नहीं भाता। वह पी० एच०-डी० है। मगर डिग्री प्राप्त करने के बाद वह कुछ नहीं करता। नौकरी पाकर उसने अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझ ली। वह मानव के ज्ञान में अभिवृद्धि कर सकता था। वनस्पति जगत् के जाने-अनजाने रहस्यों का भेदन कर सकता था। लेकिन शाम से ही वह डाक्टर, शराब के नशे में धुत हो जाता है। लेकिन शाम को उसकी पत्नी सबसे अधिक सजती है। डाक्टर को नहीं मालूम कि वह क्यों सजती है ?

शराब पीने के समर्थन में डाक्टर का अपना तर्क है। वह कह
है—" शाम को बहुत बोर होता हूँ। इससे कुछ समय कट जाता है।
यह तर्क कितना थोथा है। अनजाने रहस्यों को भेदने की आकांक्षा शरा
से अधिक नशीली है। इसमें कई शामें चुटकी बजाते कट जाती। उसे
कौन समझाये? डाक्टर भी सिरफिरा हैं। किसी की बात न
सुनता।

यह डाक्टर नहीं जानता कि जब उसकी पत्नी उसे, शाम को झटके
भीतर खींच परदा खोच लेती हैं तो क्या होता है? वह नशे में बुत अपसब
चारपाई पर लेटा रहता हैं। मगर दूसरे कमरे में खिड़की के परदे पर एक
परछाइयाँ अक्सर उभर आती हैं। वे कभी आपस में गड़मड़ हो जाती हैं
कभी उनका अस्तित्व अलग-अलग मालूम पड़ता है। दूसरी परछाये
किसकी है? यह मैं नहीं समझ पाता। मगर वह डाक्टर हो नहीं सकता
फिर कुछ देर बाद अन्धेरा छा जाता है। मैं अनुमान लगाने लगता हूँ
वे परछाइयाँ क्या कर रहीं होंगी।

डाक्टर का जीवन उसकी पत्नी की अनिवार्यता है। उसके बिना कोई
बहू बाजार के कोठे पर बैठ जायगी। वहां तो परछाइयां स्पष्ट होंगी
उनके चेहरे पहचाने जा सकेंगे। यह उनके लिए अवांछनीय स्थिति होगी
जी चाहता है कि इस मक्कार और डरपोक औरत के सीने में एक अ
गोली उतार कर उस कामचोर डाक्टर की प्रतिक्रिया देखूं।

डाक्टर अवश्य अपनी पत्नी की मृत्यु पर आंसू बहायेगा। दह
मार कर रोयेगा। बच्चों के आंसू पोछेगा। तब उसका कन्धा झ
झोरकर पूछूंगा—'इसकी इस दशा के लिए कौन जिम्मेदार है? क्यों

किया इसके लिए तूने ? क्या तेरी डिग्री लेकर वह चाटेगी ? यदि तू संसार के लिए कुछ नहीं कर सकता था तो क्या अपने परिवार के लिए भी कुछ नहीं कर सकता था ? कई रातें उसने तनहाई महसूस की होगी। तेरे घर में रहते हुए भी उसे प्रतीत हुआ होगा कि तू परदेश गया हैं। इससे बढ़कर उसके लिए कष्टप्रद और क्या बात होगी ? तभी उसने परछाई का वरण किया होगा।

दूसरे किस्म के महत्त्वाकांक्षी वे हैं जो लाटरी के टिकट खरीद रहे हैं। सब रातों रात लखपती बनना चाह रहे हैं। धन की इस लिप्सा पर एक योजना मेरे मस्तिष्क में कौंध गयी। जो चाहता है कि शहर की सबसे ऊँची इमारत पर चढ़ जाऊं। वहाँ से जहाँ तक दृष्टि की सीमा जायें पत्थर गाड़ दूँ। इस सीमांकित प्रदेश से सभी लोगों को बाहर निकाल दूं। केवल एक विवाहित जोड़े से कह दूँ—'लो यह सीमांकित प्रदेश तुम्हारा है। इसके भीतर जितनी सम्पदा बाहर जाने वाले छोड़ गये हैं वह तुम्हारा है। लो ऐश करो। यहां तुमसे कोई स्पर्धा नहीं करेगा। कोई चोर या लुटेरा तुम्हारी सम्पत्ति लूट या चुरा नहीं सकेगा। तुम एकदम सुरक्षित हो। तुम एकदम निर्द्वन्द्व हो। मैं तुम्हारा प्रहरी हूं। लेकिन तुम बाहर नहीं जा सकते। केवल यही प्रतिबन्ध है।

मुझे विश्वास है कि मेरी इस उद्घोषणा पर वह जोड़ा कुछ दिनों तक बड़ा ही मगन रहेगा। हर घर में घूमकर गड़े या पड़े धन को बाहों में भर कर खुश होगा। उसे प्रतिबन्ध की परवाह नहीं होगी। मगर चन्द दिनों में उनका मन भर जायेगा। उनको प्रतिबन्ध खलने लगेगा। अपना अस्तित्व उन्हें अधूरा लगने लगेगा। वे अपने वैभव को दूसरों को दिखाना

चाहेंगे। बिना वैभवका प्रदर्शन किये सारी सम्पत्ति बेकार होगी। अ वे पति पत्नी आपस में लड़ने लगेंगे। ऊब की यही पराकाष्ठा होगी। है कि पुलिसका भय न होने के कारण लड़ते-लड़ते एक दूसरे खून कर दें।

हा! हा! हा! मेरी तरह वे भी कितने निरीह और कितने हैं। मैंने भी लाटरीका टिकट खरीदा है। केवल इसलिए खरीदा है अगर मिल गया तो सबका ध्यान मेरी ओर आकर्षित होगा। मैं सगर्व सकूंगा कि लो मेरे पास वह चीज है जो तुम्हारे पास नहीं है। मैं जैसा नहीं हूं। तुमसे भिन्न हूं। इसी सबसे वह जोड़ा भी ग्रस्त उसे अपने ही अस्तित्व के लिए कानून चाहिये, पुलिस तथा भीतर लटकते फांसी के फन्दे का भय चाहिये। उन्हें ऐसा बालक चाहिये जिसे ये डांट सकें। उन्हें वे लोलुप निगाहें चा जो उनके वस्त्रों एवं गहनों को देख लार टपकायें। उन्हें वह चहिये जो उसकी सम्पत्ति के लालच में उनके पीछे खुला चाकू घूमा करे। उन्हें वह कमरा चाहिये जिसके परदे पर परछाइयां ग हो सके। हो सकता है कि उनकी इन प्रवृत्तियों से घृणाकर उस को गोली मार दूं।

मैंने रिवाल्वर को उलट पुलटकर देखा। उसके खुरदुरे मुठिये छुआ। उसके मुंह को अपनी ठुड्डीके नीचे छुलाकर अनुभव कि अंगुली के जरा से इशारे से गोली मस्तिष्क को भेदती निकल जायें फिर आत्मा मुक्त हो जायेगी। डाक्टरोंका कहना है कि आत्मा निवास मस्तिष्क में होता है। सबसे पहले दिमाग मरता है। इन

विचारों से मन कापने लगता है। भय लगता है कि कहीं कांपती अंगुलियों से थोड़ा दब न जाये। इसी कारण शीघ्रता से इसके खानों में भरी गोलियों को निकाल कर जमीन पर बिखेर देता हूँ।

मुझे लग रहा है कि मेरी इस दशा को आप राम, रहमान, अखिलेश, डाक्टर, उसकी पत्नी, वह परछाईं, मेरे काल्पनिक साम्राज्य के पति पत्नी मेरे सम्मुख कतार में खड़े हो मुस्कराने लगे हैं। वे मेरी ओर देखते मुस्करा-मुस्करा आपस में कानाफूसी कर रहे हैं—'यह आदमी डरपोक है। हम लोगों की तरह यह भी कमजोर है। इसे भी अपनी जान प्यारी है। यह केवल दूसरी को गोली मार सकता है। खुद गोली से डरता है।'

मैंने चीखकर उनसे कहा—

'नहीं ! नहीं नहीं ! तुम भूलते हो। मैं इन गोलियों से नहीं डरता। बस यह सोचता हूँ कि अगर अपने ही हाथों से अस्तित्वहीन हो गया तो तुमसे कौन कहेगा कि तुम्हारे रास्ते गलत हैं। कौन तुम्हारे पापों से घृणा करेगा। मुझे सन्त के बचन याद आ गये हैं कि 'पापसे घृणा करना चाहिये पापी से नहीं।' इसलिए तुम्हारे पंचतत्त्व के शरीर को समाप्त करने की आकांक्षा त्याग रहा हूँ। इसी कारण इन गोलियों को पृथ्वी पर बिखेर दिया हूँ।'

मेरी इस कड़कती आवाज को सुन सभी के चेहरे पीले पड़ गये हैं।



दाना

शहर की चिकनी सड़कों पर भीड़ में सायकिल चलाना हाथ क दक्षता पर निर्भर रहता है। परन्तु देहात में खेतों की मेड़ों पर जा घुमावदार पगडंडी पर सायकिल चलाने में, सरकस के खिलाड़ी क भाँति कुशलता और कलाबाजी की भी आवश्यकता पड़ती है। नज रास्ते पर गड़ाये रखना जरूरी हो जाता है। जरा सी नजर चूकी नह कि सार्यकिल लिये दिये खेत में गिरे और उजले कपड़ों पर निशान प गये। उस वक्त खिसियाये से, इधर उधर देख कर, कि कहीं किसी ने देख तो नहीं, धूल झाड़ कर उठ जाने के सिवाय कोई चारा नहीं रहता।

मैं ठेठ शहरी था। उन दिनों देहात अपने गाँव गया था। गाँव क बगल से ही नेपाल की सीमा तक जाने वाली सड़क उन दिनों ऊँची की जा रही थी। मिट्टी के ढ़ह जगह जगह लगे थे। उससे सड़क पर साय-किल चलाना वया पैदल चेलना भी कठिन हो गया था। यही सड़क गाँव के निकटवर्ती स्टेशन तक जाती थी। इसी सड़क के समानान्तर गोरखपुर से नौतनवा को लाइन गयो थो। वापसी में मुझे स्टेशन तक की तीन

मील की दूरी तय करने के लिए सायकिल मँगनी मिल गयी थी। इस कारण रेलवे लाइन के नीचे चलने वाली पगडण्डी से ही जाना था। उस पगडण्डी तक पहुँचने के लिए एक मील तक खेतों के बीच गुजरने वाली पगडण्डी पर चलना था। सायकिल साथ में रहते, भला कहाँ पैदल चलता। हर सायकिलबाज़ यही करता।

गेहूँ पक गया था। सुनहली बालियाँ खेतों में झूम रही थी। कहीं-कहीं ग्राम बालाएँ, चैती गाती, चूड़ियाँ खनकातीं, गेहूँ काट रही थी। मगर सायकिल पर सवार अगली पहिया को पगडण्डी पर साधे रहने के प्रयत्न में ही मशगूल रह गया। न तो ठीक से चैती ही सुन पाया, न उनके आकार प्रकार और शक्लों को ही देख पाया। मुझे ये दोनों ही अच्छी लगती है। हर पुरुष को अच्छी लगती होगी। मन में बहुत ही कोफ्त हुआ।

चार दिनों के अपने ग्राम निवास में मुझे यह अनुभव होने लगा था कि ग्रामीणों का आचार-विचार अभी भी बहुत हद तक निश्छल और सरल है। खेतों के बीच की पगडण्डी पार करने पर लाइन के किनारे की पगडण्डी मिली। वह समतल भूमि के मध्य थी। इससे लाइन के किनारे पहुँच कर जान में जान आयी। वहाँ मैं शहरी अन्दाज में सायकिल चलाते हुए देहाती जीवन के बारे में बहुत कुछ सोच गया। उनके बीच आने पर उनसे बोलने पर अजनबीपन धुल जाता है तथा एक आत्मीयता उभर आती है। कई ने कह ही दिया था—'देखलऊ भइया। बाबू त इहवाँ आयके अइसन लगे ले जैसे हाकिम हइये नाहीं। अउर ई

जौन किलरक (क्लर्क) उलरक होय जालै तौन बापौ महतरियौ, से अरबो-तरबो बूकै लागै लै जैपे कि कहवाँ कै लाट साहब हवै।'

इन ग्रामीणों के मुख से मेरे व्यवहार का यह सबसे बड़ा सर्टीफिकेट था। इसी में गद्गद् चला जा रहा था कि सिगनल गिरा दिखायी पड़ा। मस्तिष्क से सब विचार विरत हो गये। साँस धौकनी सा पैडिल पर मारने लगा। उस व्यक्ति को जिपे देने का निर्देश उसके मालिक ने दिया था। उसके बाद इतमीनान से अपने झोले में से गन्दा कपड़ा निकाला। जूतों की धूल झाड़कर उन्हें पोछा। कपड़ों की धूल झाड़ा। प्लैटफार्म पर नजर दौड़ाया तो अभी दस मिनट पूर्व अच्छे लगने वाले देहाती, गन्दे तथा घिनौने लगे। उनके कपड़ों से मार्च के महीनों में ही पसीने की बदबू का आभास होने लगा। आदमी कभी-कभी कितना जल्दी-जल्दी बदलता रहता है।'

पाँच मिनट तक स्टेशन के भीतर टिकट के लिए चिचियाता रहा। मगर टिकट देने वाले के कानों पर जूँ रेंगी ही नहीं। मुझे टिकट तो बाहर खिड़की से लेना चाहिये था। वहाँ वही घिनौने लोग धक्कम धुक्का कर रहे थे। उनके निश्छलता तथा निष्कपटता के बीच अपने कपड़ों की दुर्गति कराना मुझे मंजूर नहीं था। ये तीसरे दर्जे का टिकट करा रहे थे। मैं दूसरे दर्जे का यात्री था। इस तुर्रे पर स्टेशनके कमरे में घुस गया था। टिकट-बाबू आपत्ति करता तो कह देता कि पहले, दूसरे दर्जे के लिए अलग खिड़की होनी ही चाहिये। इसी तुर्रे पर भीतर ठाठ से खड़ा था। मगर भीतर ही भीतर टिकट बाबू की अवहेलना पर कुढ़ रहा था। छोटी-सी बात के लिए अपना परिचय नहीं देना चाहता था।

इलाके का थानेदार मेरा परिचित था। वह भी वर्दी पहनकर स्टेशन के कमरे में घुस आया था। आते ही उसने मुझे नमस्ते करने के उपरान्त कहा।

—'अरे जज साहब। कहाँ जा रहे हैं?'

—'गोरखपुर और आप ?' मैंने प्रश्न भी कर दिया।

—'मैं तो यूँ ही स्टेशन पर कुछ काम से आया था। थाने पर लौट जाऊँगा।'

इस वार्तालाप में थानेदार की आवाज और 'जज' शब्द सुन कर टिकट बाबू को करेण्ट-सा छू गया। वह चट से मेरी ओर मुखातिब होकर क्षमा याचना के स्वर में बोला—

—'जज साहब माफ कीजियेगा। मैं अभी यहाँ नया-नया आया हूँ आपको जानता नहीं था। इसी कारण गुस्ताखी हुई। कहाँ का आप को टिकट चाहिये ?, वह मेरे और थानेदार के लिए कुर्सी की धूल झाड़ते हुए एक सांस में कह गया।

टिकट बाबू को बहुत मना किया मगर उसने मुझे और थानेदार को बैठने के लिए विवश कर दिया और प्वाईंटमैन को पान लानेके लिए भेज दिया। खिड़की पर यात्री हल्ला मचा रहे थे। उसने झिड़क कर कहा।

—'क्यों शोर मचा रहे हो ? देता हूँ टिकट। अभी गाड़ी दस मिनट में आयेगी ?'

स्टेशन के भीतर थानेदार से बातें करता बैठा रहा। 'हजूर' शब्द के अत्यधिक इस्तेमाल से वह नाक में दम किये था। मगर आत्मतुष्टि 'हजूर'

शब्द को सुनकर सबको होती है। इसी कारण गर्दन कड़ा किये बैठा रहा। स्टेशन स्टाफ पर मेरे रुतेब का रुवाब जम जो चुका था।

गाड़ी आयी और मैं सेकण्ड क्लास के डिब्बेमें चढ़ गया। खिड़की के पास की सीट खाली थी। डिब्बे में पाँच छै आदमी से अधिक न थे। सामने, मेरी तरफ पीठ किये और चिवूक मेरी ओर घुमाये एक युवक बुशर्ट और पतलून पहने बैठा था। उसकी आयु पच्चीस वर्ष के आस-पास थी। उससे दो व्यक्ति बातें कर रहे थे। उनमें से एक अधेड़ और एक युवक का समवस्यक था।

होली जलने में अभी दो रोज बाकी था। बात करते हुए व्यक्ति ने कुरता पहन रखा था। मालूम पडता था कि इन कपड़ों को कई दिनों से बदला नहीं गया था उनमें सलवटे पड़ी थीं और रंग की हरी-पीली लकीरें गवाही दे रही थी कि होली पास है। दूसरे युवक के गोरे शरीर पर टेरिलीन की कमीज थी। नीचे बनियाइन न होने के कारण सीने के बाल भी झीने कपड़े से दिखाई पड़ रहे थे। गले में झुलती रुद्राक्ष की माला यह सोचने को विवश कर रही थी कि धार्मिकता के इस प्रदर्शन की इस युवक को क्या आवश्यकता पड़ी। इस युवक को भी धोती मटमैली तथा रंगों की बूटाकारी से चटकीली हो गयो थीं। कमीज को भी धोया नहीं गया था। बाहों तथा गले पर मैल चिपक गया था।

अधेड़ व्यक्ति मेरे सामने एक हाथ में पहलवान छाप बीड़ी का पैकेट थामे दूसरे से बीड़ी का कश ले धुआं खिड़की के बाहर छोड़ रहा था। इत्तिफाक था कि धुआँ गाड़ी चलने के कारण मेरी ओर आ नहीं पा रहा

था। बोड़ी का गहरा सा कश लेकर उस अधेड़ व्यक्ति बुर्शट पहने हुए युवक से कहा—

'तो आप नौतनवा में सहायक इंजीनियर हैं ?'

'जी हाँ !' युवकने मुस्कराते हुए कहा। शायद उसकी यह आदत थी। वह मुस्करा कर ही उत्तर देता था। लेकिन तुरन्त ही उसकी मुद्रा गम्भीर हो गयी। उसने चट प्रश्न किया—'लेकिन आप कैसे जानते है ?'

'अजी हम ठेकेदार है। सभी लोगों को जानते है। न जानें तो काम कैसे चलेगा ?' अधेड़ व्यक्तिने आत्मगौरव के साथ कहा।

इंजीनियर फिर मुस्करा पड़ा। मुस्कराने के कारण उसका क्लीन चेहरा बहुत भोला-भोला-सा लगता था। इंजीनियर से अधेड़ तथा उसके बगल में बैठा दूसरा युवक बातें करने की उत्सुक मालूम पड़ रहे थे। अधेड़ व्यक्तिने सोचने की-सी मुद्रा बनाकर कहा—

'क्या डिस्टेंट सिगलकर पर गाड़ी आप के ही लिए रुको थी ?

'हाँ, हाँ ! मैं एस० ई० साहब के मोटर में आ रहा था। जरा देर से पहुँचा तो गाड़ी चल चुकी थी। एस० ई० साहब ने कहा कि गाड़ी मैं तुम्हें पकड़वा दूँगा। स्टेशन से गाड़ी आगे लाये। सड़क में गार्ड को हाथ दिखाया। वह एस० ई० साहब की मोटर को पहचानता था। ब्रेक लगा-कर गाड़ो रोक दी।' —इंजीनियर के शब्दों से यह मालूम पड़ता था कि वह ठेकेदार पर इस बात की धाक जमा देना चाहता था कि उसके बास, एस० ई० साहब उसे इतना मानते है, कि स्टेशन तक अपनी मोटर में खुद

छोड़ सकते हैं तथा अपने पद के जोर से गाड़ी को बीच में रुकवा कर गाड़ी पकड़वा सकते है।

अधेड़ ठेकेदार भी कम घाघ नहीं था। वह जानता था कि ऐसे मौकों पर कैसे शब्द इस्तेमाल करने चाहिये। वह बहुत ही मीठी आवाज में बोला—

'अजी आपके एस० ई० साहब बड़े वसूल के आदमी है। ठेकेदारों का बड़ा ख्याल रखते हैं।' ठेकेदार का तर्ज पंजाबी था।

दूसरा नवयुवक अब तक चुप्पी साधे था। उसके माला के हिलने से ही पता चल रहा था कि वह इस चुप्पी से ऊब गया था। अपने लम्बे मुख विवर को खोल कर बोला—

'अजी बड़ा पक्का वसूल उनका क्या कहना ?' वह मगन सा हो रहा था। उसने अपनी बात पर जोर देने के लिए अपनी भिण्डी जैसी लम्बी तर्जनी को हवा में अपने चेहरे के सामने हिलाया। अधेड़ व्यक्ति इस बीच मौज से बीड़ी पीता रहा। मगर उसके होंठों का फैलाव बता रहा था कि वह किसी मधुर बात को सोच कर मन ही मन मुस्करा रहा है। बीड़ी खत्म हो चुका था। खिड़की के बाहर ठूंठ फेंकते हुए कहा—

'एस० ई० साहब बड़ा ही मजाकिया है।'

'क्या किया एस० ई० साहब ने ?' इंजीनियर ने पूछा।

अधेड़ व्यक्ति चाव से कहने लगा—

हमारे जोड़ीदार नौतनवाँ में ओवरहेड टैंक बनवा रहे है और मैं पाइप लाइन बिछा रहा हूँ। एक रोज टैंक का मुवायना करने आये और जोड़ीदार से बोले—'तुम तो सीमेण्ट में बालू कम मिलाता है। तुम्हारे

पहले का ठीकेदार तो इस टंकी में भी एक हिस्सा सीमेण्ट में छै हिस्सा बालू मिलाता था।' जोड़ीदार शब्द पर नवयुवक ठेकेदार की ओर इशारा किया गया था।

बात समाप्त कर ठेकेदार ठठा कर हँस पड़ा। डिब्बे में उसकी आवाज गूंज गयी। एक क्षण के लिए डिब्बे के लोगों ने उसकी ओर देखा फिर अपने-अपने कार्य में मशगूल हो गये। इंजीनियर अपनी आदत के अनुसार मन्द-मन्द मुस्कराता रहा। नवयुवक ठेकेदार के होंठों में भी हँसी फैली थी, मगर वह ठहाका मार कर हँसा नहीं। उसकी आँखें चमक रही थी। अधेड़ व्यक्ति को इसी बीच पेट में मरोड़ शुरू हुई। हँसी के स्थान पर कष्ट की रेखायें माथे पर उभर आयीं। वह उठकर बाथरूम में चला गया।

नवयुवक ठेकेदार वार्तालाप में कूद ही चुका था। गाड़ी एक स्टेशन पार कर गयी थी। इंजीनियर ने नवयुवक से पूछा—

'तो क्या आपने ओवर हेड टैंक का ठेका खुद लिया है?'

'हाँ। हाँ।' नवयुवक ने आत्मगौरव महसूस करते हुए कहा। वह वार्तालाप बढ़ाने की उत्सुकता में सीट पर कुछ आगे खिसक आया था ताकि इंजिनियर की बात साफ सुनाई दे सके।

"बहुत ही अच्छी बात है। अगर इतने उमर में ही आप ने इतना बड़ा-बड़ा काम शुरू कर लिया तो आगे आप बहुत बड़े ठेकेदार होंगे।" इंजीनियर ने भविष्यवक्ता की भाँति उसका भविष्य भाख दिया।

अपने बाँयें हाथ की लम्बी और कृश तर्जनी को हवा में विचित्र प्रकार से लहराते हुए, जिससे उसके प्रत्येक शब्द पर भरपूर बल पड़े, ठेकेदार ने कहा—

—'अजी मैं नारायण सेठी का चेला हूँ। उसी ने मुझ को ठेकेदारी सिखायी है।'

—नारायण सेठी नाम सुनकर इंजीनियर चौका—'उसके जोड़ का ठेकेदार तो हिन्दुस्तान में नहीं है।'

ठेकेदार के लिए इंजीनियर के मुख से यह बहुत बड़ी सर्टिफिकेट थी। उसका आत्मगौरव चेहरे पर छलक रहा था। आँखें सिकुड़ कर भी और चमक रही थीं। गाड़ी के हिचकोलों के साथ उसके गले की रुद्राक्ष माला एक अन्दाज से हिलती रही। ठेकेदार के शान की वृद्धि में इंजीनियर ने दो क्षण रूक कर मन ही मन कुछ प्रसन्न होते हुए कहा—

—'तब तो आप पक्के ट्रेण्ड ठेकेदार हैं ? फिर आपकी कामयाबी का क्या पूछना ?'

अधेड़ व्यक्ति तब तक बाथरूम से लौट आया। अपने स्थान पर बैठते हुए कुछ शिकायत की मुद्रा में इंजीनियर से कहा—

—'नौतनवा का पानी तो बड़ा खराब है। आप को रास आया ?'

—'मैं तो फिल्टरका पानी पीता हूँ। ट्यूबवेल का भी पानी नहीं पीता। इसी वजह से दो सालों में मुझे कोई शिकायत नहीं हुई।'

—'हम ठेकेदार लोग भला इतना कहाँ कर सकते हैं'—अधेड़ व्यक्ति ने मजबूरी जाहीर की। साथ ही इंजीनियर को बहुत बड़ा आदमी साबित किया।

इसके बाद तीनों व्यक्ति नौतनवा के जलवायु की शिकायत करते रहे। मच्छरों, मलेरिया और नमी को कोसते रहे। फिल्टर की कार्यविधि की जानकारी ठेकेदारों ने मालूम किया और उसकी उपयोगिता को समझ

कर प्रसन्न हुए। गाड़ी गोरखपुर के लोको इंजन शेडके बगल से गुजर रही थी। ठेकेदार ने बाहर देखकर असन्तोषको साँस लेकर कहा—

—'गाड़ी तो यहाँ धरमपुर रुकेगी ?'

—'धरमपुर कैसा ? अब कोई बीच में स्टेशन नहीं है।' —इंजो-नियर ने आश्चर्य से प्रश्न किया।

—'रेलवे की मेहरबानी है। रोज यहाँ सिगनल न गिरने के कारण गाड़ी रुकती है। कभी सिगनल गिरा नहीं होता है तो बिना टिकटवाले जंजीर खींचकर रोक देते है। गाड़ी रुकती जरूर है।'

—'ऐसा क्यों करते है ?' नवयुवक इंजोनियर ने भोलेपनसे प्रश्न किया।

—'अजो रेलवे के जितने बिना टिकट वाले भाई-भतोजे, साले ससुरे हैं, कहाँ उतरेंगे ? इसीलिए गाड़ो यहाँ रोज रुकती है। अगर कोई गैररिश्ते का बिना टिकटवाला उतरता है तो गार्ड व टी० टी० रेलवे के टिकट का दाम वसूल कर आपस में समझौता कर लेते है।' नवयुवक ठेकेदार ने अपनी आवाज़ को चरपरा कर रहा। आवाज़ में व्यंग्य था।

संयागसे उस दिन गाड़ो 'धरमपुर' केवल एक मिनट ही खड़ो रहो। गाड़ो प्लेटफार्म पर पहुँचो तो अधेड़ व्यक्ति तुरन्त दरवाजे पर आ खड़ा हुआ और कुलो को बुलाकर कहा—

—'देखो जो ! साहब का वह सूटकेस ओर होल्डाल है। उतारो। देखो संभालकर उतारना। कोई सामान खराब न होने पाये।'

इंजीनियर इस आभार से नत-सा हो गया था। आत्मसम्मान की तुष्टि हो चुकी थी। उसने दोनों से हाथ मिलाया और अकड़ते हुए लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ रेलवे गेट की ओर चला गया। नवयुवक ठेकेदार व अधेड़ व्यक्ति ने एक दूसरे को देखा। दोनों की आँखों में भेदभरी चमक थी। नवयुवक ने अधेड़ व्यक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा—

—'गुरु कोई चिड़िया फँसाना तुमसे सीखे।'

अधेड़ व्यक्ति ने गर्व से कहा—

—'बर्खुरदार दाना डाल चुका हूँ। आगे-आगे देखो होता है क्या?'

एक झटके में दोनों बहेलियों व उस चिड़िया को देखकर मन हीं मन मुस्कराते मैंने भी राह ली।

हार

वह सुदामा प्रसाद को गाड़ी पर चढ़ाने स्टेशन गया था। उसकी बेटी भी साथ गयी थी। रात आठ बज कर पचपन मिनट पर गाड़ी जाती थी। स्टेशन पहुँचते-पहूँचते वनारस से आने वाली गाड़ी छपरा की ओर रेंगने लगी थी। उनके प्लेटफार्म पर आते-आते गार्ड का डिब्बा और उसके पीछे लगी लाल बत्ती भी गुजर चुकी थी। वे लाइन पार कर दो नम्बर के प्लेटफार्म पर चले गये थे। सुदामा प्रसाद को गाड़ी वहीं आने वाली थी।

सुदामा ने उसकी बेटी के लिये टाफी खरीदा था। बेटी प्लेटफार्म तक टाफियाँ को मुठ्ठियों में दबाये रही। प्लेटफार्म पर पहुँच कर टाफियों के ऊपर का रैपर खोल कर टाफियाँ कुटकुटाने लगी। पाँच मिनट में ही वह सब टाफियाँ चट कर गयी तथा उसके बाद बोर होने लगी। वह खड़ा, दूर सिगनल की बत्ती को देख रहा था। उधर ही से सुदामा की गाड़ी आने वाली थी। उसके सामने से एक युगल निकल गया। नयी उमर मगर चार बच्चे अगल-बगल थे। एक बच्ची युवती के

दाये कन्धे पर सोयी थी। दूसरा बच्चा उसके बायें हाथ को ओर फु
कता चल रहा था। पुरूष के दोनों हाथों को पकड़ दो बच्चे उसे घसो
से चल रहे थे। उसने मुस्करा कर लाइन पार करते इस जोड़े को दे
कर सुदामा से कहा "क्या तावड़तोड़ पैदा कर रखा है" ? उसने कहा-

"हो सकता है कि दो ही बार में इतने हो गये हो"।

सुदामा ने कहा। उसने फिर गौर से देखा। बोला

"नहीं दो बार में नहीं। तीन बार में हो सकता है। मगर हर पैद
बार में साल दो साल से ज्यादा फर्क नहीं लगता। पति के साथ वा
बच्चे जुड़वाँ मालूम पड़ते है।"

सुदामा इस बात से सहमत हो गया था। बोला "मगर हमारे औ
इनमें फर्क है। इनके तीन लड़के औंर एक लड़की है। हम लोग को
चार-चार लड़कियाँ हैं।"

बात कुछ भी नहीं थी। प्रत्येक दर्द को दूर करने के लिये हम क
कभी ठहाके से हँस दिया करते थे। ऐसी पीडाओं का हमारे पास य
इलाज था। इसलिये बस हँस दिये। फर्क कुछ भी नहीं रह गया।

बेटी जिद करने लगी थी—"मम्मी पास जायेगें।" सुदामा ने
आग्रह किया—"भाई साहव जाइये न। मैं ट्रेन में वैठ जाउँगा।"

वह असमन्जस में था। उसका चपरासी दूर वैठा था। उठकर पा
आया बोला

'हुजूर! गाड़ी आने में घंटे भर की देर है। आप जाइये न।
वैठा दूँगा।'

'क्यों शाहगंज वाली तो अगले स्टेशन पर खड़ी है।'

'है तो। मगर बनारस वाली को अगले स्टेशन पर पहुँचने में एक घंटा लग जायेगा। बनारस वाली अगले स्टेशन पर पहुँच जायेगी तब ही वह गाड़ी इधर आयेगी।'

'क्यो एक घंटा लगेगा ?'

'बनारस वाली गाड़ी पर करीब दो दर्जन स्कूली लड़के चढ़ गये है। वे अपने-अपने गाँवों के सामने चैन खींच-खींच कर उतरेंगे। इसमें अगले स्टेशन गाड़ी पहुँचने में एक घंटा लग जायेगा।'

बात सही थी इस सेक्सन को गाड़ियाँ कभी सही समय से चल ही नहीं पाती। जगह-जगह ट्रेनों को रोककर उतरना आम बात थी। रेलवे प्रशासन इस पर रोक लगाने में असमर्थ था। मन मसास कर उसने सुदामा से विदा ली।

लौटते वक्त वह सोचने लगा था क्या इन्हीं औलादों के लिये माँ बाप ने मिन्नते मानो थी कि वे बड़े होकर समाज को व्यवस्था का हो चकना चूर कर दे। क्या फायदा है इस सबसे ? मगर किसो को संतोष नहीं होता। कहते है कि आखिर औलाद-औलाद हो है। उसके वंश का चिराग हैं भले नाम कतवारू हो क्यों न रखना पड़े। एक दृष्टि उसको अपनी जिन्दगी पर भी गयी। उसे वह दिन याद आया जब नलिनी ने उसे बड़ी ठेस पहुँचायी। वह बेटी को चिपकाये कमरे में लेटी थी। उस दिन उसे नलिनी को बाँहों में भर लेने को इच्छा हो रही थी। वह उसकी बगल में लेटा। नलिनी की बाँहो पर अपना हाथ रखा। नलिनी उसकी बाँह झटक दी। बोली

'कहाँ आ गये यहाँ ? चलो हटो सोने दो।'

'क्या नहीं रहने दोगी ?

'नहीं।' उसने दृढ़तापूर्वक परन्तु रूखे स्वर में कहा।

'क्या वह आखिरी फैसला है ?'

'हाँ।' उसने कठोर वाणी में बिना मुंह घुमाये ही कह दिया।

'तो मैं तुम्हारे पास फिर कभी नहीं जाऊँगा।' मारे क्रोध के चार पाई से उठ कर नीचे खड़े होते हुए उसने कहा।

'कोई हर्ज नहीं।' बेटो को कलेजे से चिपकाये, बड़े ही ठंडे स्वर में वह बोली।

'फिर आज की रात हमारे तुम्हारे सम्बन्धों की आखिरी रात होगी।'

'होगा जी। जाओ न। सोने क्यों नहीं देते ?' उसने चिड़चिड़ा कर कहा।

वह वहाँ से दूसरे कमरे में अपनी चारपाई पर चला गया। उसका सारा शरीर जल रहा था। उसने निश्चय कर लिया कि जीवन भर वह उसे छुवेगा नहीं। जो चाहता था कि नलिनी को छोड़-छाड़ कर चल दे मगर बच्चों का क्या होगा ? वे पाँव की जंजीर बन गये थे। आसमान में घिरे बादल बरसने लगे थे। बिजली की कड़क में सब छोड़ कर जाने का उत्साह जाता रहा। विवश हो चारपाई पर अपना सिर दायें बाँह की हथेली पर टेके कुछ देर तिरछा लेटा रहा।

पानी बरसता जा रहा था। विश्लेषी मन कुछ गुन रहा था। परसों ही तो वह झींक रही थी।

'इन बच्चों ने तो नाक में दम कर रखा है।'

'क्या हुआ ?'

'देखिये यह जया रोज विस्तर में पेशाब कर देती है। उसी में पड़ी सोती रहती हूँ। कुसुम अलग बिस्तर गोला करती है। बिस्तर साफ रखने को तरस गयी हूँ।'

बात तो सच ही थी। कभी-कभी जया, नलिनी के विस्तर पर भी सो जाया करती थीं। उसे भी गीले बिस्तर में रात भर सो जाना पड़ जाता था। नलिनी के दाहिने पाँव के घुटने पर तो इसका असर आ ही गया था। रोज़ दर्द से छटपटाती-झटकारती रहती थी। हाथ पाँव की अंगुलियाँ चटखाती, फिर काम करती, फिर सुस्ताती। यही क्रम सुबह से शाम तक चलता रहता था।

रोज़ सुबह अलगनी पर चादरों, गद्दों, दरियों की लाइन लग जाती थीं। उन पर पीले-पीले धब्बे बहुत बुरे लगते थे। सम्भ्रांत का बिछौना लगता ही नहीं था।

कुछ ही दिनों की तो बात है। मिसेज़ और मिस्टर सरन की आवाज़ बाहर सुनायी पड़ी नहीं, कि नलिनी बिछौने जल्दी से लपेट कर स्टोर में डाल आयी और चारपाई पर धुला चादर डाल दिया। इज्जत ढँक गयी थीं। श्रीमती व श्री सरन पूरा घर घूम कर बहुत प्रसन्न हुए थे। उनका घर के अन्दर तक आना जाना था। श्रीमती सरन ने तो स्वीकार ही कर लिया था।

'आपके इन्तज़ाम का तो मिसेज़ पाण्डे दाद देती हूँ। चार चार बच्चे होते हुए भी घर मातो जैसा रखती है। मेरे बच्चे तो बहुत शैतान है।

इधर धुली चादर बिछी नहीं कि उस पर कूद-कूद कर गन्दा कर देते हैं"। नलिनी मुस्करा कर रह गयी। सरन दम्पति को कहाँ मालूम था कि इस मुस्कराहट के पीछे कितने पीले-पीले धब्बों का दर्द छिपा था।

मिसेज़ सरन तो लेडीज़ क्लब में बड़ी डींगे हाँकती थीं। कहती थीं कि उनके ससुराल में सात पुश्त तक तो किसी ने नौकरी नहीं की। सब बड़े-बड़े मिल मालिक, रोजगारी थे या कुछ न हुआ तो खेती करते थे। यही सरन साहब न जाने कहाँ नौकरी के चक्कर में पड़ गये। जो तनखाह मिलता है उसमें होता है क्या? मकान का किराया, बिजली पानी का दाम, राशन पानी तथा बच्चों की फीस, पढ़ाई ये सब लग जाता है। सात साल की नौकरी में एक सोने की मुन्दरी तक तो खरीद नहीं पाये। मायके से मिले साड़ियों से काम चल रहा है। मायके वाले अभी भी दस पन्द्रह हजार के कपड़े भेज देते है। इन बातों से सभी क्लब के सदस्यों पर श्रीमती सरन के मायके के सम्पन्न होने का रूआब छा जाता था। उनकी क्लब मे पहनी जाने वाली साड़ियाँ सबसे मँहगी होती भी तो थीं।

नलिनी को मालूम था कि मिसेज़ सरन की गर्वोक्ति के पीछे कितने पीले चकत्ते छिपे थे। वैसे लेडीज़ क्लब मे सब एक से एक बढ़-चढ़ कर हाँकती थीं। कोई औरत किसी से कम नहीं थीं। मगर लेडीज़ क्लब के एक मीटिंग से मिसेज़ सरन चक्कर में आ गयी थीं। उस दिन उनकी बारी थीं। क्लब की मीटिंग उनके निवास पर हुई। अपनी शान को दिखाने के चक्कर में डेढ़ हजार खर्च हो गये थे। चार दिन बाद उनका एक चपरासी बन्द लिफाफे में एक पुर्जा लाया। लिखा था

बहन ! सप्रेम नमस्ते ।

चपरासी के हाथ सौ रुपया भेज दीजियेगा । अगली पहली को लौटा दूंगी । कृपया रुपया लिफाफे में बन्द कर लिफाफे के मुंह को गोंद से चिपका देना, जिससे कि चपरासी को मालूम न हो ।

आपकी शुभेच्छु
शान्ता सरन

नलिनी ने रुपया भिजवा दिया था । उस दिन से मिसेज् सरन नलिनी से सच बात कबूल ही कर जाती थीं ।

जया प्रायः बीमार रहा करती थीं । जरा सा वातावरण में सर्दी गर्मी का परिवर्तन इसका रोग बढ़ा देता था । पाँच साल की हो गयी थीं परन्तु उसकी हड्डियों पर गोस्त नहीं चढा । चलती तो उसके पाँव डगमगाते रहते । मगर उसका दौड़ना सबको अच्छा लगता था । बातें वह बड़ी प्यारी करती । चन्द दिनों पहले की ही बात थी । सिविल सर्जन के यहाँ संगीत गोष्ठी में अपनी मा के पास जया दो घण्टे बैठी रही । वह गायकों की प्रत्येक मुद्रा पर मुस्करा उठती । संगोत समाप्त होने पर उसके पिता ने जया से पूछा था ।

'कैसा लगा ?'

'बाबू जी बाजा लेकर वे कैसा कैसा मुँह बना रहे थे । गाने वाले तो हाथ मटका रहे थे । मुझे तो बढ़ी हँसी आ रही थीं, मगर मैं जोर से हँसी नहीं ।'

उसे तथा नलिनी का अब समझ में आया कि दो घण्टे कैसे जया चुपचाप मुस्कराती बैठी रही। उसे गवैयों के मुँह और हाथों के हाव-भाव, झूमने तथा सिर हिलाने से एक विदूषक की कला का आनन्द आ रहा था।

पिछली गर्मी में तो उसकी और नलिनी की शादी हुए उन्नीस साल पूरे हो चुके थे। गौने के वर्ष ही पद्मा गर्भ में आ गयी थीं। इस साल वह सत्रह पूरा करने लगी थीं।

पद्मा के बाद ही वह गर्भ धारण करने से घबराने लगी थीं। मगर पुत्र की लालसा में हर तीसरे या चौथे साल एक लड़की पैदा हो गयी। हर बार उसने क्या-क्या न किया। दिन रात धर्म की पुस्तकें पढ़ती रही। सुन्दर बालक का चित्र कमरे में अपनी आँखों के सामने रखती। कैलशियम की गोलियाँ खाती। दूध में वंशलोचन खाते समय उसे मिचली आती थीं। परन्तु एक पुत्र की लालसा में यह सब झेल गयी थीं।

आखिरी पुत्री की बार तो डाक्टर मिसेज़ दत्ता ने तो बड़ा भरोसा दिलाया था। प्रसव के एक मास पूर्व ही उन्होंने नलिनी से कहा—

'मिसेज़ पाण्डे में दावे के साथ कहती हूँ कि इस बार आपका लड़का होगा।'

नलिनी और उसके पति बहुत प्रसन्न थे। डाक्टरनी उन लोगों के लिये साक्षात् परमेश्वर बन गयी थीं। नलिनी खुद अस्पताल गयी थीं। डाक्टर मिसेज़ दत्ता ने गुनगुनाते हुए से बंगाली लहजे में कहा था—

'आज हमें आप लोगों के लिये लोड़का लाना है।'

वह प्राइवेट वार्ड के बरामदे में बैठा लेकर लेवर रूम को ओर देखता नतोजे का इन्तजार कर रहा भा। चपरासो दौड़ा आया। बोला

'हुजूर बच्चा पैदा हो गया, मगर कोई बताता नहीं कि क्या हुआ।'

इस वाक्य से उसके मन में डर सा समा गया। कहीं इस बार भो लड़को न पैदा हुई हो। मन ने तर्क कर समझाया। हो सकता है कि कार्य बहुलता के कारण डाक्टरनो ने न बताया हो। हो सकता है कि इस डर से कि मारे खुशो के नलिनी का कुछ न हो जाये न बताया हो। ऐसो अनेक सम्भावनायें वह सोच गया।

आधे घण्टे बाद मिसेज़ दत्ता पास से गुजरो। उनकी आँखें झुको थीं। पलकें बिना उठाये बोली

'मुझे अफसोस है मास्टर पाण्डे कि फिर लड़को हुई।'

डाक्टरनो चलो गयों। उनके इन वाक्य से उसके मस्तिष्क ने सोचना हो जैसे बन्द कर दिया। परन्तु उसके मस्तिष्क ने स्वयं से प्रश्न किया।

'अब ?'

स्वयं से किये इस प्रश्न का उत्तर न देकर वह शून्य सा थका हारा, नलिनी का इन्तजार करता रहा। नलिनो को दाइयाँ स्टेचर पर लाकर बिस्तर पर लिटा गयों। उसको आँखों से आँसू बह रहे थे। उसने रूमाल से उसकी आँखें पोंछ कर कहा

'पगलो कहो को। रोते नहीं। देख तो बेबो कितनी सुन्दर है।'

डाक्टरनो शाम को फिर राउन्ड में आयों तो नलिनो ने रूआँसो होकर कहा—

'डाक्टर साहब मेरा आपरेशन कर दीजिये।'

'डाक्टर ने मना कर दिया।'

'एक लड़का कम से कम हो तो जाने दो।'

'पाँच तो हो चुकी है।' नलिनी ने करुण स्वर में कहा।

'क्या हर्ज है ?' डाक्टरनी ने सहज भाव से कहा था। 'हम सात बहने एक भाई है। भाई हम सात बहनों के बाद पैदा हुआ था।'

नलिनी चुप रह गयी। उसके चेहरे पर वेदना फैली ही रह गयी। उस समय उसके मन में एक प्रश्न घुमड़ रहा था। –'क्या इसी उम्मीद में फिर कष्ट सहना पड़ेगा ? और कब तक ?'

उसके बाद बात वही समाप्त हो गयी थीं। अंतिम पुत्री को दो साल पूरे हो रहे थे। नलिनी को बराबर डर लगा रहता था कि कहीं गर्भ न ठहर जाये। इस कारण वह अपने पति को रजोदर्शन से सोलह दिनों तक अपने पास आने नहीं देती थीं। उस दिन तो उसे अपने पति से काफी कठोर होना पड़ा था।

चारपाई पर लेटा लेटा वह सारी बाते सोच गया था। उसे फिर नींद आ गयी। इसके बाद कई दिनों तक उनमें बोल चाल नहीं रही। नलिनी उसके लिये सुस्वादु भोजन बनाती थी। पद्मा परस देती थी। शाम को वह क्लब से जानबूझ कर देर से आता था। अंगीठी से उतार कर खाना स्वयं परस कर खा लेता था। उसे खाना गरम मिलता था। नलिनी जानती थी कि उसके पति को ठंडा खाना अच्छा नहीं लगता। उसके खाना खाने के बाद चारपाई पर पड़े नलिनी उसे टुकुर-टुकुर देखती और आधा या पौन घण्टे के बाद जब वह पढ़ते-पढते सो जाता तो बत्ती बुझाकर सो जाती। नलिनी के मन में एक टीस सी उठती जो घुमड़ कर रह जाती।

उस दिन उसके संयम का बाँध टूटने लगा था। अचानक कई बार उसकी अँगुलियों के पोर नलिनी के शरीर से छू गये थे। सुखद सनसनाहट उसने अनुभव किया था। प्रत्येक स्पर्श के समय नलिनी ने हौले से मुस्करा दिया था। लेकिन वह दृढ़ था कि इस बार नलिनी को ही मनाना पड़ेगा।

उस रात जब बच्चे सो गये थे। वह बाहर आँगन में चारपाई के पास टहलता रहा। मन में उहापोह था कि कौन मेल के लिये पहल करे। किसी कोने से मन ने उसे ललकारा था कि–'अरे ऐसी भी क्या पति-पत्नी की कसमें जिन्दगी भर चलती हैं। कितनी मजबूर है नलिनी, क्या वह भी कभी सोचा है ? क्या वह खुशी से ऐसा करती है।'

विवश हो उसने उसे हाथ पकड़ कर उठाया और कहा

'चलो।'

वह बेटी के पाँयते तिरछे लेटी एक पत्रिका पढ़ रही थीं। शरारत से बोली

'हार गये न।'

'हार ?' उसने खिसियाहट से कहा।

'हाँ।'

'पुरुष तो हमेशा हारता है।' उसने विजयी स्वर में कहा। —'यह तो हमेशा होता आया है।'

नलिनी उसकी बाँहों में निहाल हो गयी थीं। आत्मसमर्पण करते हुए उसने कहा था।

'मुझे तुम्हें सताना अच्छा थोड़े ही लगता है।'

वह बोला नहीं। उसकी पीठ को हौले-हौले सहलाता रहा।

●

अमावस, चोर और चांदनी

पूर्णिमा की रात है। आकाश से धरतो पर चाँदनी उतर रहो है। श्रीमान् "क" अपने निवास स्थान पर बैठे बड़े चिन्तित हैं। आज यह अपने कार्य पर नही जा सकते। इन पर पुलिस की विशेष कृपा रहतो है। फलस्वरुप इन्हें जेल का सुस्वादु भोजन करने का अवसर कई बार मिल चुका है। आप गुमनाम मुहल्ले में रहते हैं तथा बड़े हो बिलासप्रिय हैं। अपने शरीर को रोटी कमाने को चिन्ता के लिये कष्ट देना उचित नहीं समझते। एक वार किसी संस्कृत के पुस्तक में पढ़ा था—

उद्योगिनम् पुरुष सिंहमुपैति लक्ष्मी,
दैवेन देयमति कापुरुषाः वदन्ति।
दैवम् निहत्य कुरु पुरुषार्थ आत्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोत्र दोषः॥

परन्तु इसको बकबास समझ कर भूल गये। अब बराबरी के समाज में विश्वास रखते हैं। इसी कारण अमीरों का माल यदा कदा अपने घर में भर लेने के नियम के बड़े पक्षपातो हैं। यद्यपि आप अपने पुष्ट शरीर

को कष्ट देना नहीं चाहते, परन्तु अपने विश्वास को फलीभूत देखने के लिये मोटी से मोटी दीवाल में सरलता से छेद कर सकते हैं। फिर अमीरों के पास आवश्यकता से अधिक संचित धन का इस प्रकार बँटवारा करते हैं कि मुस्तैद से मुस्तैद प्रहरी को भी आहट नही होने पाती। परन्तु इनके कार्यक्रम को इस पूर्णिमा के चन्द्र ने चौपट कर दिया है। इसी कारण हाथ पर हाथ धरे उसको कोस रहे हैं।

श्रीमान् 'प' जाति के ब्राह्मण हैं। आप शिव जी के मन्दिर के पुजारी हैं। अपने मन्दिर में केवल उच्च वर्णों को ही जाने देते हैं। इस कदर धर्मानुयायी होते हुए भी आप शृङ्गारी एवं रसिक जीव है। आप की परकीया प्रेम में विशेष रुचि है। जहाँ तक आपके इस दृष्टिकोण का सम्बन्ध है आप जाति पाँति का भेद भाव नहीं रखते। साथ ही साथ अछूतोद्धार करके देश सेवा भी करते हैं। इसी कारण रात के अन्धेरे में बगल के मुहल्ले में जाते हैं एवं श्रीमान् 'ख' की पत्नी श्रीमती 'च' से रास रचाते हैं, यद्यपि इनके पास श्रीमती 'च' से कही अधिक सुन्दर पत्नी हैं तथा दो पुत्र रत्न भी हैं।

और बेचारी श्रीमती 'च'। उसका पति श्रीमान् 'प' के मुहल्ले में रहता है और जूते सीता है। 'च' युवा है। मनचली भी है। बाजारु चीजों और चटपटो की प्रेमी है। यद्यपि 'ख' युवा है, परन्तु गरीब है। वह श्रीमती 'च' की आवश्यकतायें पूरी नहीं कर पाता। एक रोज 'च' आँखों में काजल, माथे पर बिन्दी और पाँव में महावर लगाये दरवाजे पर गुड़िया बनी चहक रही थी कि श्रीमान् 'प' जूता बनवाने के लिये श्रीमान् 'ख' के यहाँ पहुंचे। 'च' और 'प' ने एक दूसरे के नेत्रों की

भाषा समझ ली। पण्डित 'प' श्रीमती 'च' की यौवन ज्वाला के परवान चढ़ गये। उधर 'च' को पैसे मिलने लगे और पण्डित 'प' का परकीया शृङ्गार चल निकला। परन्तु आज पण्डित 'प' किस प्रकार जायें। उपर जो इनका शत्रु आसमान में इनको हँसता हुआ देख रहा है। इसलिये श्रीमान् 'प' अपनी धधकती ज्वाला को शान्त रखने के लिये मन्दिर की खुली छत पर जाकर टहलते हुए धवल एवं शीतल चन्द्रिका में स्नान कर रहे हैं।

श्रीमान् 'ज' एक संभ्रान्त व्यक्ति हैं। आप उच्च पदासीन तथा धनी भी हैं। जैसे एकाध कुटेव सब में होती हैं, वैसे इनमें भी है। यदि एकाध अधिक हुई तो कौन सी चिन्ता की बात है। आखिर कौन सतयुग में रहते हैं। कलियुग में इनका पाया जाना स्वाभाविक है। आप न्याय करते हैं। जुआड़ियों, चोरों, डाकुओं इत्यादि को कड़ी सजा देते हैं। परन्तु आप एक मन्दिर के पुजारी भी हैं और सूनी रातों में अकेले वहाँ पर जाना आपका नियम हैं। उजली रातों और दिन में उस मन्दिर के फाटक आप के लिये बन्द रहते हैं।

कुमारी 'ब' देश की वह दुःखी कन्या है जो इस आधुनिक समाज में कदापि सुखी नहीं रह सकती। इसी कारण एक अभिनव समाज के निर्माण का स्वप्न देख रहीं हैं। आपकी योजना का कुछ अंश इग्लैंण्ड निर्मित है और शेष अमेरिका निर्मित है। परन्तु इस समय कुमारी 'ब' एक समस्या से ग्रस्त हैं। इससे छुटकारा पा लें तो अपना स्वप्न पूर्ण करें। आपके पिता गरीब हैं, और आपके उत्तरोत्तर बढ़ती वय को देखकर विवाह के लिए चिन्तित हैं। एक आध जगह बात

चलो तो वर पक्ष वालों ने दहेज के लिए खुब मुँह फैलाया। कुमारी 'ब' के पिता के प्राण हो सूख गये। कुमारी 'ब' ने निश्चय किया कि अपने पिता को दहेज प्रथा से मुक्त कराने के लिए वे स्वयं किसी आधुनिक मनोवृत्ति वाले युवक से विवाह करके दहेज मांगने वालों, के मुँह पर एक जोर का थप्पड़ मारेगी। इसी योजना के फलस्वरूप कालेज जीवन में कुमार 'र', जो मनचले, सुन्दर एवं स्वच्छन्द विचारों वाले युवक हैं, से आपका प्रेम हो गया। दोनों प्रेम के गगनचुम्बी शिखर पर बढ़े जा रहे थे कि अचानक फिसल पड़े। अब कुमारी 'ब' मां बनने वाली है। आप समाज के भय से त्रस्त हैं। इसी कारण कुमार 'र' के अंश से छुटकारा पाना चाहती है। परन्तु वह सौभाग्यवान् आजकल में ही प्रकाश देख लेने वाला है। यह सोच कर इनको चक्कर आ रहा है और सो नहीं पा रहीं हैं।

श्रीमान् 'ड' डरपोक तबीयत के आदमी हैं। आप व्यापारी हैं। चाय में लकड़ी का बुरादा, चीनी में बालू, देशी घी में वनस्पति, आदि-आदि भिन्न-भिन्न वस्तुओं में भिन्न-भिन्न पदार्थ मिलाकर खुले आम बेचते हैं। जिन वस्तुओं के खुलेआम बचने में वैधानिक बाधा होती है उसे अपनी दुकान के चोर दरवाजें से बेंच कर जरूरतमंदों की आवश्यकताऐ पूरी कर देते हैं। यदि किसी सरकारी अधिकारी की कुदृष्टि पड़ जाती है तो उसके शमनार्थ उसको यथाशक्ति पत्रम पुष्पम् से पूजा करके चलते वक्त कुछ बिदाई भी दे देते हैं। श्रीमान् 'प' श्रीमान् 'ड' के इस भेद को जानते हैं। श्रीमान् 'प' को न मालूम क्या आनन्द आता है कि श्रीमान् 'ड' के निजी मामलों में दखल देकर उनके गुप्त भेद को

समाज में बाटते हैं। केवल यही नहीं श्रीमान् 'प' ने एक सार्वजनिक सभा में श्रीमान् 'ड' और उनके समान धर्मी बिरादरी वालों को खुले रूप में बड़ी भर्त्सना भी की है। इसी से आपकी श्रीमान् 'प' से पुरानी शत्रुता है। इसी कारण छः इंच वाली रामपूरी चाकू को पत्थर पर चमका कर, पाकिट में ले कर श्रीमान् 'प' के पीछे घूम रहे हैं। अवसर नहीं मिलता है कि अपनी चाकू का आलिंगन 'प' के पेट से करा दें। श्रीमान् 'प' के परकीया प्रेम को बात आपको ज्ञात नही वरना इस प्रकार इसका प्रचार करते कि श्रीमान् 'प' की सारी हेंकड़ी काफूर हो जाती। आकाश में चन्द्रमा उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। आज वह अपनी सम्पूर्ण कलाओं सहित चमक रहा है। आप उस अवसर की तलाश में हैं जब कि साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे।

पन्द्रह दिवस उपरान्त—

आज दीवाली की अमावश्या है। घर-घर में लक्ष्मी पूजन हुआ और शहर के सभी घर दीपों से सजाये गये। चन्द्र घड़ियों तक ये दीप, अपनी छटा दिखाकर बुझ गये। कुछ समय पूर्व तक प्रकाशित गलियों में इस समय सदा की भाति घनघोर अँधेरा छाया हुआ है। अब हाथ तक नहीं दिखाई देता। केवल प्रमुख सड़को पर बिजली के लट्टुओ का मद्धिम प्रकाश फैला है।

श्रीमान् 'क' अपने मकान से निकले। कुत्ते भौंक रहे हैं, मानो सोने वालो को अगाह करते हो कि भाई जागते रहो शैतान का साम्राज्य फैला है। परन्तु इसको श्रीमान् 'क' की परवा नहीं। वे समझते हैं कि ये मूर्ख तो यूँ हो व्यर्थ में भूकते हैं व भूकते रहेंगे। हाथी चला जाता

है, कुत्ते भूँकते रहते है। श्रीमान् 'क' को आज अमावस्या जगाना आवश्यक था अन्यथा रोजगार साल भर खण्डित ही रहेगा। अतएव प्रमुख सड़कों पर चलते-चलते श्रीमान् 'क' चुपके से एक अंधेरी गली में घुस गये। आप ने एक मजे का असामी तजबीज कर उसके घर में छेद कर दिया और मकान का सारा रस बटोर कर चलते बने। लौटते समय एक पुलिस वाले ने देख लिया। इनको खदेड़ा मगर पकड़ न सका। आप भागकर अपने घर में घुसे तो घोड़े की तरह हाफ रहे थे।

पंडित 'प' ने पंडिताइन से यह बहाना बनाया कि आज रात भर लक्ष्मी मंदिर में अखण्ड पूजन करना है और उससे छुटकारा पाकर मंदिर में शिवलिंग पर चढ़ा सबसे बढ़िया मिठाइयों का दोना और चढावे में आये कुछ पैसे लिये श्रीमान 'क' की भाति रोशनी से बचते हुए एक अधेंरी गली में घुस गये। जब श्रीमान् 'ख' के घर में पहुचे तो सन्नाटा छाया हुआ था। 'ख' दिन भर के कामों से थका अपने औजारो के मध्य ही एक अद्धा दारु का सेवन कर लुढक गया था। मैदान पुरा साफ था। पंडित 'प' ने इधर उधर देखा और शंका की कोई वस्तु दिखाई नहीं दी तो हल्की आवाज से खखारा। श्रीमतो 'च' ने तुरन्त उत्तर दिया और बाहर निकल आयी। वे पूर्व निश्चित सामने के झुरमुट की आड़ में चले गये। पंडित 'प' अपनी मनोनीत लक्ष्मी की यथाविधि पूजा में रत हो गये।

उधर श्रीमान् 'ज' के पेट में विचित्र खलबलो मची हुई है। आज दिवाली के दिन अपनी अधिष्ठात्री देवो के मंदिर में लक्ष्मी पूजन करना अत्यन्त आवश्यक समझते हैं। सरे शाम दीपो के बुझ जाने की बड़ी

बेचैनी से प्रतिक्षा कर रहे हैं। थोड़ी देर में दीप जब बुझ गये और शैतान ने संसार के ऊपर अपना काला चादर फैलाया तो श्रीमान् 'ज' श्रीमान् 'क' के नियमों का पालन करते हुए अपनी अधिष्ठात्री देवी के मंदिर में पहुंचे तो जुआ देवी अपने उच्चतम शिखर पर सौ सौ बल खाती नृत्य कर रही थी। बेचारे जुआरी झूठी आशा के मोह में फँसे दाँव पर दाँव लगाते जा रहे थे। मगर चाँदी के गोल सिक्के इस मंदिर के सरदार की थैली की ओर ही ढुलकते जा रहे थे। श्रीमान् 'ज' भी भारत के छत्तीस करोड़ देवी देवताओं को मनाकर फड़ पर बैठे। घंटे भर में मामला वारा न्यारा हो गया। मस्तिष्क से सारा बुखार उतर चुका था। जेब में अब केवल चार सौ रुपये बाकी थे। सामने देखा तो लालपरी खड़ी मुस्करा रही थी। एक अद्धा खरीदा और ढालकर पड़ गये। शायद अब होश में रह कर संसार को मुह दिखाने का ताब नहीं रह गया था।

कुमारी (ब) को दिवाली के पाँच दिन पूर्व एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। इससे छुटकारा पाना आधुनिक समाज के नियमों के अनुसार अत्यन्त आवश्यक था। इस कारण आपने आज का दिन निश्चित किया क्योंकि आज की रात हर व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है और बहाने बनाने के अवसर भी सरलता से प्राप्त होते हैं। कुमारी 'ब' अपने माता पिता को चालें बताती हुई एक दूसरे शहर में करीब सात महीने से अपनी सखी के यहाँ ठहरी हुई हैं। आज यह कार्य इन्हें किसी न किसी भाँति पूरा ही करना है। इस कारण दिवाली के दियों के बुझ जाने की बड़ी व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रही है। यद्यपि रात में ठंडक बढ़ने लगी है पर माथे पर पसीने की बूंदे चुहचुहा आयी हैं। दीपों के बुझ जाने के बाद

आप शंकित नेत्रों से इधर उधर देखती हुई अपने कलेजे के टुकड़े को हृदय में छिपाये निकली और एक कुए की जगत पर आ खड़ी हुई। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। कुए के पास लगे हुए वृक्ष अन्धकार को और भी सघन बना रहे हैं। कुमारी 'ब' ने अपने पुत्र को कस कर सीने से लगाया और जोर से चूमा। भीगी पलकों से उसे कुँए के जगत पर सुला दिया। गर्म कपड़ों में लिपटा अबोध बालक अभी इस पापमय संसार से अनभिज्ञ सो रहा है। करुण नेत्रों से उसकी ओर देखती हुई वह आड़ में चली गयी। कुमार 'र' का काली करतूतें मस्तिष्क में बिजली की भाँति कौंध गयी। उसने कुमारी 'ब' के साथ मनमाना खेल खेल कर उसे मसल कर फेंक दिया था। कुमारी 'व' ने कुमार 'र' से कितनी बार प्रार्थना की कि वह उससे विवाह कर ले परन्तु वह मुकर कर दूसरी तितलियों के फेर में चला गया था। इस समय कुमारी 'व' का मातृत्व करुण क्रन्दन पर रहा है। परन्तु समाज के भय से आहें होठों के पार नहीं निकल पा रही है। काश कुमार 'र' में वफा होती तो आज मातृत्व को सीने पर पत्थर रखकर हृदय के टुकड़े का अलग नहीं करना पड़ता।

श्रीमान् 'ड' आज बहुत प्रसन्न हैं। एक तो दीवाली दूसरे श्रीमान् 'प' जो उनके शक्तिशाली शत्रु हैं आज मुँह की खा गये। पंडित 'प' का एक नवीन गुण ज्ञात हुआ। आप गुप्त रूप से सुरा का भी सेवन करने लगे थे। दुर्भाग्यवश दीवाली के उपलक्ष्य में श्रीमान् 'प' अत्यधिक शराब पीकर रास्ते में मुंह के बल औंधे पड़े थे। अचानक 'ड' की 'प' से मुलाकात हो गयी। निविड़ अन्धकार थी ही। 'ड' अपना काम करते हुए

भाग खड़े हुए। पंडित 'प' लालपरी के आगोश में मस्त स्वर्ग पुरी को सिधार गये।

साल भर बाद

दिन का ज्वाला है। श्वान में समा कर शैतान सो रहा है।

श्रीमान् 'क' को पिछली दिवाली का रोजगार धन्धा फैला नहीं। जिस व्यक्ति का भार हल्का किया था उसके हिमायती पुलिस वाले निकल आये और श्रीमान् 'क' को घर दबोचा। श्रीमान् 'क' ने रोजगार के लाभ में से आधा साझा करने की बहुत कोशिश की पर कोई चारा न चला। बेचारे छः मास के लिये फिर बड़े घर भेज दिये गये। जेलर ने इस बार बड़ा बुरा बर्ताव किया। पिछले वर्षों में जब यह वहाँ पर तफरीहन गये थे तो बड़ी खातिर हुई थी। जेल नियमों का तनिक भी ध्यान न कर इस बार जेलर ने श्रीमान् 'क' के स्वस्थ शरीर की खूब सेवा की। शायद इसी से दो माह पूर्व जब आप बाहर आये हैं अपना रवैया बदल दिया है। सफेद धोती और कुर्ता पहन कर जनता के कर्ण-धार बन गये हैं। ताजा माल उड़ाते हैं और लम्बा चौड़ा व्याख्यान झाड़ते हैं। श्रीमान् 'क' पछताते हैं कि यह सद्बुद्धि इनको पहले क्यों न आयी वरना क्यों अपना पिछला इतिहास कलंकित करवाते। श्रीमती 'च' को पंडित 'प' का दिया हुआ एक गोरा चिट्ठा पुत्र उत्पन्न हुआ है। 'च' के पति श्रीमान् 'ख' बड़े प्रसन्न हैं। अपनी बिरादरी को दावत भी दे चुके हैं। 'च' को पुत्र उत्पन्न हुए चार माह हुए। पंडित 'प' उसका मूख देखने को इस संसार में नहीं हैं। बेचारी 'च' उनकी सुध करके रोती हैं और बीते दिनों को तरसती हैं। 'प' ने एक नये जाति को

जन्म दिया था। काश ! 'प' व 'च' ने इसे खुलेआम और वैधानिकता से किया होता।

कुमारी 'व' के भाग्य ने भी करवट बदल ली है। दहेज की बदौलत वह आज एक एक कुलीन परिवार की बहू है। उनका पिछला इतिहास निविड़ अन्धकार के गर्त में छिपा है। परन्तु जब कभी भी बीते दिन याद आ जाते हैं मन कुमार 'र' के प्रति घृणा और आक्रोश से भर उठता है।

श्रीमान् 'ड' ने पंडित 'प' का बेड़ा पार करने में सतर्कता तो अवश्य बरती परन्तु जरा सा चूक गये। उन्होंने अपना रामपुरी चाकू जब जेब से निकाला तो रूमाल धोखा देकर भूमि पर गिर पड़ा। इसके कोने पर इनकी पत्नी ने प्रेमवश श्रीमान् 'ड' का नाम रेशम से काढ़ दिया था। बेचारे कानून के चक्कर में पड़कर शीघ्र ही पंडित 'प' से मिलने की तैयारी कर रहे हैं। जनता को बहुत धोखा दिया इसका आपको हार्दिक क्लेश है। परलोक सिधारने की चिन्ता में अब जीवन की घड़िया गिनते हुए दिन भर में एक सौ आठ माला शिवस्तोत्र का पाठ करते हैं।

श्रीमान् 'ज' को एक रोज दरोगा ने रंगे हाथों पकड़ लिया पर नौकरी पर रहम खाकर छोड़ दी। तबसे इन्होंने मंदिर में जाना छोड़ दिया, लेकिन जब कभी दरोगा न्यायालय में जाता है तो आँखे झुक जाती है। अपने स्वास्थ्य का बहाना बनाकर आपने स्थानान्तरण के लिये सरकार कों लिख दिया है।



चहार दीवारी

काठगोदाम स्टेशन पर ही उसने कंडक्टर से कह दिया था कि उसे मकरन्दपुर स्टेशन पर जगा दे। वह बीमार था। वर्थ नम्बर बारह पर वह लेटा था। भुवाली सेनोटोरियम से वह घर जा रहा था। वह सोचता था कि इतनी लम्बी यात्रा के कारण वह थका है। लेटते ही नींद आ जायेगी। भुवाली से काठ गोदाम तक की यात्रा कमर तोड़ देने वाली होती है। उसका शरीर शिथिल हो रहा था। मई की भीषण गर्मी से भी उसने चादर ओढ़ रखा था। उसे सर्दी लग रही थी। ऐसा लगता था कि उसके शरीर का रक्त धीरे धीरे जमता जा रहा है। लेकिन मस्तिष्क में कुछ यादें चल रही थी।

उसे केतकी के पत्र की सभी बातें याद आ रही थी। पत्र की बातों के साथ ही उसे कई यादें कचोट गई। कितनी रूपमती थी। अधखिले गुलाब सी अरुणिमा लिये, चंपई रंग की छरहरी सी ढ़ीठ लड़की थी। हिरणी सी कुलाचें भरती रहती थी। बड़े बूढ़े सब परेशान थे। कई जनों ने कहा भी था—'जिस घर जायेगी आग बरसेगा। सास इसे झाड़ू मार कर न निकाल दे तो मेरा नाम किसी कुत्ते के नाम पर रख देना।'

लेकिन यौवन के दहलीज में पांव रखते ही केतकी के शरीर से वह ढीठ बचपन न जाने कहाँ चला गया। वह पूरी औरत बन गई। उसके दिल में हूक उठी। उसने सोचा था कि केतकी के मन को ठेस नहीं लगने देगा। उसे बड़े ही प्यार से रखेगा। उसकी हर इच्छा पूरी करेगा। मगर केतकी ने लिखा था।

बड़े गांव
१७ मार्च

प्रिय राजन्

तुम दूर सेनोटोरियम में पड़े जीवन से जूझ रहे हो। इसका मुझे स्वयं दुख है। इस दुख में तुम्हारा हाथ बटा भी नहीं पाती। कितनी इच्छा है कि तुम चंगे हो जाते तो तुम्हारे साथ हंसी खुशी से चार दिन की यह ज़िन्दगी बिता लेती। वास्तव में तुम्हारा स्वभाव हीरे जैसा है। तुम्हारे जैसा आदमी मिलना असम्भव है। तुम्हारे साथ कोई भी स्त्री अपने को सौभाग्यवान समझती। लेकिन यहाँ तो तुम्हारी बीमारी हमारे सुखमय वैवाहिक जीवन के बीच दीवार बनी है।'

उसे अंतिम वाक्य पर पुरानी बातें याद हो आयी। ऊपर डिब्बे का पंखा कुछ खड़खड़ाता हुआ घूम रहा था। साथ के यात्रियों में अधिकांश की नाक बोलने लगी थी। बस एक कोने में कंडक्टर अपने कागजात लिख रहा था। उसकी आखें ऊपर देख रही थी। लेकिन मन कहीं कुछ दूर देख रहा था।

उसके घर में बटवारा हो गया था। बड़ा भाई अलग हो गया था।

आंगन में दीवार खिच गयी थी। तुलसी का चौरा उसके हिस्से में पड़ा था। केतकी ने संतोष प्रगट किया था।

—'आप चिंतित क्यों हैं। देखिये वह तुलसी जी हमारे हिस्से में आयी है। परमेश्वर हम पर कृपावान है। सब कल्याण होगा।'—उसने अपनी बरौनियां फड़काते बड़े ही आशा से तुलसी के चौरे की ओर उंगली उठा दी थी। वह केतकी को सहारा दे घर में ले गया। वह बंटवारे से बहुत दुखी थी। दीवाल उसे बहुत सताता था। मगर आज वह दीवार की ही बात कर रही थी। उसका मन और बैठ गया। ऐसा लगा कि सांस उखड़ती जा रही है और कोई चीज शरीर से निकलती जा रही थी। एक-एक बात रह रह कर कचोटती जा रही थी। केतकी ने आगे लिखा था।

'लेकिन अफसोस हैं राजन कि इतना ही केवल पर्याप्त नहीं है। याद है तुम्हे वह रात? वह हमारी सुहागरात थी। उस रात तुम्हारा रोग अचानक उभर आया था। तुमने खांसते हुए बलगम के साथ कुछ रक्त भी वमन कर दिया था। कुछ दया मिश्रित..........भी उत्पन्न हो आयी थी। छिपाना क्या? साफ कह दूं। दया मिश्रित घृणा भी उत्पन्न हो आयी थी। रात भर तुम्हारी पीठ सहलाती रही। और वह सुहानी रात यों ही बीत गयी थी।'

उसने कष्ट से डिब्बे में देखा। उसे आज भी कष्ट था। सुहागरात की यह घटना उसे लज्जित कर गई। यह केतकी को काली आखों की गहराइयों में खो जाने की रात थी। वह रात ऐसी थी जिसकी मस्ती

शराब के हल्के नशे में झूमती स्वप्निल मनमोहक संगीत सी थी। केतकी के कोमल हाथ की सफेद अंगुलियों की जो हर सिंगार के फूलों सी सुन्दर थी, हाथ में लिये उसके कोमल होठ, लजाये शरमाये से होठों को अतृप्त प्यास लिये देखने की रात थी। मगर आह। सारी रात यूं ही खाँसते बीत गई। केतकी पीठ सहलाती रही। वह अपराधी सा पड़ा केतकी को निहारता रहा। केतकी की आखों में, अपनी विवशता पर आँसू जरूर थे। उसे ठीक याद आ रहा था। उसने सहलाते सहलाते अपने घुटनों पर सिर टिका लिया था। दीवार के इस पार के तुलसी ने भी कल्याण न किया। केतकी को आशा निरर्थक हो चली थी। उसे अपने पर क्रोध आया। अपने भाग्य पर क्रोध आया, जो उसके नियति को न बदल सका। एक दर्द नश्तर की तरह उसके सीने में लहरा गयी।

पत्र में केतकी ने आगे लिखा था।

'तबसे पांच साल बीत गये हैं। मुझमें महर्षि च्यवन की पत्नी सुकन्या बनने का उत्साह शेष न रहा। इतनी शक्ति भी नहीं है कि अश्विनी कुमारों से अमृत मांग कर तुम्हें स्वस्थ बना दूँ। सावित्री बन तुम्हे लौटा भी सकने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है। मेरी कसमसाहट मेरे संयम के बांध का तोड़ डालना चाहती है। उस बांध को अभी तक मेरी सामाजिकता बचाये रखे हैं।'

केतकी ने साफ साफ लिख दिया था। वह हिन्दू नारी थी। सामाजिक बंधनों के बीच जीना चाहती थी। लेकिन उसकी भी तो कुछ आवश्यकताये थी। यौवन के तूफानों को शान्त करने का उपाय करके ही, सामाजिक बंधनों के बीच जिया जा सकता था। वह इसी शोक में

डूबने लगा। उसके अंग अंग शिथिल होने लगे। वह कुछ चेतयाशून्य भी हो रहा था।

कन्डक्टर ने उसे झकझोरा

—'भाई मकरन्दपुर आ गया।'

उसने चट से हाथ हटा लिया। ऐसा लगा कि उसने तप्त लोहा छू लिया हो। शरीर बुरी तरह जल रहा था।

—'हां आं ह ह' उसने कराहा

—'अरे भाई तुम्हें तो बुखार है।'

—'हां ऽ ऽ आ ऽ ऽ।' उसने दुहराया।

—'तो कैसे उतरोगे ?'

—'नहीं उतरू उँ उँ गा।'

—'मतलब ? कंडक्टर घबराया।

—'हां ऽ ऽ आं ऽ ऽ नही इ इ ही अ उतर पाऊँगा।' राजन हाँफ रहा था। उसकी सांस उखड़ती जा रही थी।

कंडक्टर परेशान था। वगल की सीटों के यात्री जाग गये थे। रोगी यात्रो ने कंडक्टर का हाथ पकड़ लिया था। करूणा की टिमटिमाती रश्मि अपनी वुझती आखों की लौं में भरकर गिड़गिड़ाते हुए बोला

—'उससे कहअ देना भाई कि दीवार टू टू गया टूट............'

किससे भाई किससे 'कंडक्टर ने आजिजी से पूछा।

रोगी यात्री ने अपने कमजोर हाथों से विस्तर के नीचे टटोल कर एक मुचड़ा कागज निकाल कर बोला

—'जि''''स''''को उ उ य''''ह..........'

और वाक्य पूरा होने के पूर्व सिर एक ओर लुढक गया। कंडक्टर के हाथों में उसका निर्जीव हाथ तथा वह मुचड़ा कागज था। वह हतबुद्धि हो गया था। कंडक्टर अपने हाथ के कागज को कभी, और कभी, उसे देखता। सहयात्रियों में सुरहरी फैल गयी—'च् च् च् बेचारा मर गया।'

—'न मालूम ?'—कंडक्टर ने उसी मूढ़ावस्था में कहा। उसकी बात अधूरी रह गयी।

—'अरे भाई यह चिट्ठी तो देखो।'

कंडक्टर को ध्यान आया। उसने पत्र पढ़ना प्रारम्भ किया। यह केतकी का वही पत्र था जिसे राजन अंतिम क्षणों में गुनगुना रहा था। केतकी ने आगे लिखा था।

'जानते हो ? गांव का वह शिवभजन क्या कहता है ? कहता है कि मैं चहारदीवारी में कैद हूँ। मैं जब तक इससे मुक्त नहीं होती वह मुझे अपना नहीं सकता। मैं उसके बलिष्ठ बाहों में खो जाना चाहती हूँ। राजन मेरे चतुर्दिक खड़ी इन दीवारों को ध्वस्त कर दो। आओ पंचायत के सामने छुट्टी छुट्टा कर दो या पंचायत के मुखिया के नाम ही कोई चिट्ठी लिख दो।

मेरे प्यारे राजन। मेरे लिये बस इतना कर दो। मैं तुम्हारा अहसान जीवन भर नहीं भूलूँगी। यह पत्र लिखने को विवश थी। शिवभजन का आमंत्रण मेरे पावों को खीच रहा है। मेरी मांग में जो लक्षमण रेखा

खींच गये हो उसे तोड़ दो। मुझे मुक्त कर दो राजन, मुक्त कर दो। बस ! परमेश्वर तुम्हें सुखी रखे

तुम्हारी कभी
केतकी

पत्र पढ़कर कंडक्टर दंग रह गया। एक ओर प्यार भरा अहसान तथा दूसरी ओर उसी से मुक्ति के लिये छटपटाहट। उसे अपने घर की बाते याद हो आयी। उसकी पत्नी भी तो क्षय ग्रस्त है। शायद पुत्री को भी छूत लग गया है। वह भी खांसती रहती है। क्या इसी कारण वह अपनी पत्नी का परित्याग कर दे ? वह कितनी प्यारी है ? कोयल सी कूकती रहती है। बीस वर्षों में घर को सांज सवार रखा है। कंडक्टर उदास हो गया था।

उसका मन एक दु:कल्पना से सिहर उठा। यदि उसकी क्षयग्रस्त पुत्री को उसके पति ने छोड़ दिया तो ? वह इस प्रश्न पर व्यग्र हो उठा। खामख्वाह इस आदमी के कारण अगले स्टेशन पर गाड़ी लेट हो जायेगी। वह जल्द से जल्द घर पहुचना चाहता था। उसकी इच्छा हो रही थी कि कब घर पहुच शान्ता की परिचर्या में तत्पर हो जाये। वह उसे मृत्यु के हाथों से भी छीन लेने को तत्पर हो गया था।

भीड़ पूछने लगी।

—'किसकी चिट्ठी है कंडक्टर साहब ?'

इसके बीवी की।

—'क्या लिखा है।'

—'क्या करियेगा पूछ कर ? प्राइवेट मामला है। इसका मजमून सबको नहीं बता सकता। जाइये अपने सीट पर बैठिये। मुझे मेमो लिखने दीजिये। वरना गाड़ी लेट हो जायेगी। क्या आप चाहते हैं कि गाड़ी लेट हो ?'

—'नहीं ! नहीं ! आप लिखिये।'

भीड़ खिसक गयी। वह एक सीट पर मेमो लिखने लगा। भीड़ को देर से डर लग रहा था। न जाने कितनी दीवारे यह देर ध्वस्त कर जाती। इस कारण प्रश्न भीड़ की होठो में भिंच कर रह गये।



कुहरों के साये

कुहरों के साये उसके चारों ओर फैले हैं। उसे डर है कि यदि वे छँट गये तो उसका आदिम रूप उघड़ जायेगा और तब उसे अपनी आँखें मूँद लेनी होगी ताकि कोई भेदती आँख उसकी दृष्टि को न छू ले। उसे ऐसी निगाहों से डर लगता है। किसी नज़र ने यदि देख लिया तो उसे शर्म लगेगी। वह सदा शर्मिंदा होने से भयभीत रहता है। वह नहीं चाहता कि कोई उसका वास्तविक रूप देखे।

लेकिन ये कुहरे छँटते ही जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि उसके अन्तःस्तल में बैठा कोई, उसका लेखा-जोखा ले रहा हो। उसके मन में कई चित्र उभर आ रहे हैं। नुमायश की वह शाम उसे याद आ रही है।

उस पर से निगाहे हटती ही नहीं थी। बगल में कमर पर एक नक्काशीदार सफेद रंग का घड़ा रखे कुछ बाँयी ओर चेहरा झुकाये वह खड़ी थी। दाहिना हाथ घड़े के चतुर्दिक फैला था। श्वेत पृष्ठभूमि पर कलाई की मर्मरी नीली चूड़ियाँ चमक रहीं थीं। कुहनी से ऊपर गहरे नीले रंग की चोली, और चोली के ऊपर हल्के पीले रंग की ओढ़नी, जिसमें चोली का नीलापन अधिक उभर रहा था, और इस दुहरे आवरण

के बीच भी कुछ उसके पुष्ट युवा मांसलता का परिचय दे रहा था। वह बाँये हाथ से लाल बार्डरों वाली काही रंग के लँहगे को थोड़ा उठाये अपने कुछ हल्के बदामी रंग के पाँव को बढ़ाये इस तरह खड़ी थी जैसे चश्मे के उस पार से, पानी भर कर अपने लँहगे को बचाती चश्में को पार कर रही हो।

नुमायश में इस मूरत को कई बार वह देख चुका था। मगर इस अधउघड़े पाँव के नीचे रखे फडफडाते काग़ज के टुकड़े पर लिखे अंकों को पढ़ कर जी धक् से हो जाता था। लिखा था ५००/—'। मिट्टी की मूरत का इतना दाम।

एक बार उसके जी में आया की खरीद ही ले। ड्राइंग रूम में रखने पर वह सज उठेगा। मूर्ति को वैठक में गर्द और नमी से बचाने के लिये ऊपर से शीशे के बेलजार से ढँक देगा। इससे वह मैली न होगी।

मूरत मैली होने के डर ने उसे झकझोर दिया। उसकी पत्नी लता उससे दूर छिटक कर एक दूकान पर चूड़ी खरीद रही थी। उसे चूड़ियों की दूकान पर खड़ा होना बड़ा बुरा लगता था। वह उस समय भी चूड़ियों की दूकान पर खड़ी अविनाश से हँस हँस कर बातें कर रही थी। वह चूड़ियाँ हाथ में नचाता रोशनी में कभी देखता, फिर लता को कलाई से सटा कर, उससे कुछ कहता। उसके मुख पर प्रशंसा के भाव उपस्थित थे। वह अवश्य कहता होगा—'बहुत अच्छी लगेगी भाभी आप पर।' लता ने अविनाश की पसन्द की गयी गुलाबी रंग का सेट खरीद लिया था।

उसके पास आने पर लता ने चुनमुनिया सी चहक कर उससे कहा था—'देखिये मैंने कैसा प्यारा सेट खरीदा है।' वह उसकी भावनाओं

को ठेस नहीं पहुंचाना चाहता था। उसने भी चेहरे पर मुखौटा सा डाल, हँस दिया था। यह उसके छद्म अनुमोदन का द्योतक था। वह नहीं चाहता था कि अविनाश द्वारा पसन्द को गयी चूड़ियाँ लता खरोदे। परन्तु अपनी इस मनोभावना को वह वहाँ प्रकट नहीं होने देना चाहता था।

लता यदि लाखों में एक नहीं तो कम से कम हजारों में एक अवश्य है। निश्चय ही उस जैसो पत्नी हजार में, नौ सौ निन्नाबे के पास नहीं है। चटख चाँदनी जैसा उसका रंग है। नाक नक्श सुडौल है। तीन बच्चों की माँ होने पर भो उसका शरोर थुलथुल नहीं हुआ है। उसकी देह अभी भी मोसल और कसी है। बच्चों की देखभाल ठीक ढंग से करती है। पति की आमदनो के भीतर खर्च चलाती है। और क्या चाहिये उस जैसे पुरुष को अपनी पत्नी से।

इस स्वयं से किये गये प्रश्न का उत्तर देने में वह असमर्थ था। वह लता को उसका भाग नहीं दे पाता था। ऐसा लगता था कि वह लता के तौर तरीके पसन्द नहीं करता था। जब वह भोजन करने बैठता तो वह उसके पास बैठती ही नही थी। उस समय अवश्य वह गुसुलखाने में कपड़े कचारने बैठ जाँयगो। उस समय कोई खाद्य पदार्थ घटने पर, उसे पुकारो, इन्तजार करो, या रसोईघर में जाकर स्वयं ले लो। इस तरह की बहुत सी छोटो-छोटो बातें हैं। वह कहाँ तक गिनाये। कदाचित वह इनके बारे में सोचता भी नहीं। इन सब के बारे में सोचने का कारण यह है कि उसे लता का अविनाश से बोलना पसन्द नहीं आता। उसका अविनाश से हँस हँस कर बाते करना तथा उसकी पसन्द की गयी चुड़ियाँ खरीदना तो उसे कत्तई पसन्द नहीं। उसे डर लगता था कि कहीं लता

मैली न हो जाये। उसके चतुर्दिक भी वह अपनी दृष्टि का बेलजार डाले रहना चाहता था।

इस निरन्तर रखवाली से वह ऊब गया था। वह किसी नयी विधा की तलाश में था। वह अपने एक सहयोगी की बहन की कृपादृष्टि का सौभाग्य प्राप्त कर चुका था। उनके बीच बात काफी आगे बढ़ चुकी थी। अपनी अपनी आवश्यकतायें वे दोनों समझते थे। वे एक दूसरे को बड़ी अंतरंगता से समझते भी थे। वह नीरजा थी। नीरजा जानते हो किसे कहते हैं? वह जो पानी से उत्पन्न हो, अर्थात् कमलिनी। नाम के अनुरूप ही कोमल, कमनीय और दर्शनीय है। उसके पास जब यह बैठता था, तो एक मादक गन्ध सी मन में भर जाती थी। नीरजा का सान्निध्य उसे बहुत अच्छा लगता था।

नीरजा और उसकी भाभी फ्लश के बहुत शौकीन थीं। उनकी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये उस सहयोगी के घर जब ताश पार्टी जुटती थी तो वह अवश्य जाता था। उनकी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये वह कुछ भी कर सकता था। जब-जब, नीरजा या उसकी भाभी से उसकी ताश की चाल फँस जाती थी तो उसे बड़ा मजा आता था। नीरजा अपने पत्तों को देखती, फिर फड़ के पैसों को देखती। वह चाल पर चाल बढ़ाकर चलती। जब कभी उससे चाल फँसती तो नीरजा के पत्ते कमजोर होते। यह केवल संयोग की बात थी। परन्तु प्रायः वह नीरजा को जीतने का अवसर देता।

इस हार में भी उसे आनन्द आता था। वह फड़ से पैसों को बहुत

उत्साहित हो बटोरती थी। उस समय उसके कपोलों पर रक्त दौड़ जाता था। सामने फड़ से पैसे बटोरने के लिये झुकने पर कभीं कभी उसके कन्धे से पल्लू गिर पड़ता था। बड़ी अल्हड़ता से वह पल्लू उठाती थी। जल्दी नहीं करती थी। इतमीनान से पल्लू कन्धे पर डालती। एक आधुनिकता का उससे बोध होता था। वह माडर्न युवती थी। लता जैसी, उसे हमेशा बोर नहीं करती थी। लता का पढ़ना, लिखना जैसे बेकार हो गया था।

नीरजा उसे छोड़ने फाटक तक आती थी। फाटक के बगल में खड़े होकर वे हमेशा देर तक बातें करते थे। वे बातों में खो जाते थे। उस समय नीरजा का सिर उसके वक्षस्थल पर टिका होता था। शायद फ्लश की उसकी हार, विजय में बदल जाती थी। सबको मालूम हैं कि फ्लश में उसके पास प्राय: अच्छे पत्ते आते हैं। नीरजा के भाई का जब तबादला होगा तो उसकी क्या दशा होगी। तब तो वह बिछड़ जायेगी। परन्तु इसकी उसे चिन्ता नहीं थी। उसके पास जो है, उसे वह भरपूर पा लेना ही अपनी उपलब्धि समझ रहा था।

पारिवारिक संस्कार उसे प्रात: दुर्गा सप्तशती का पाठ करने को विवश करता था। उसको इस पुस्तक का चतुर्थ अध्याय बड़ा अच्छा लगता था। इसमें देवताओं ने देवी की स्तुति की है। परन्तु—'या देवी सर्व भूतेषु क्षमा रुपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम: !' का पाठ करते करते उसे नीरजा याद आ जाती थी। वह घबरा उठता था। पूजा में एकाग्रता चाहिये। लता या नीरजा का ध्यान आना अनुचित है। इस अनुचित का फल बुरा होता है। वह अपने सीमित सुखों

को खोना नहीं चाहता था। उसका डरपोक मन और भयभीत हो उठता था। वह जोर से सिर हिला कर श्लोकों का पाठ करने लगता था। श्लोकों का अर्थ भी पढ़ने लग जाता था। नीरजा उसके मस्तिष्क पटल से दूर हो जाती थी।

पूजास्थल पर उसे एक पत्रिका में छपा लेख याद याद आ जाता था। साधारणतया लेखक लोग नारियों के कर्तव्य की याद दिलाते हैं। परन्तु उसमें पुरुषों के कर्तव्यों कों बताया गया था। उसमें लिखा था कि परनारी से प्रेम, द्यूत क्रीणा तथा पत्नी पर अविश्वास अक्षम्य अपराध है। उसने ऐसा करने वाले को घोर नरक का भागी बताया था। नीरजा तो परनारी थी। उसे खुश करने को, उसके साथ फ्लश खेलता था। फ्लश तो द्यूत क्रीणा ही है। लता पर वह अविश्वास करता था। वह सोचता था, कि इस कारण उसे भी नरक मिल सकता है। उसका मन एक झटके में सब सोच जाता था। उसका मन कह उठता कि जो कुछ कर रहा है, वह सब पाप है।

दुर्गासप्तशती पाठ के अन्त में देव्यापराधक्षमास्तोत्र पढ़ते पढ़ते उसे संतोष होता कि उसके अपराध देवी क्षमा कर देंगी। देवी कृपालु है, माँ है, जगज्जननी हैं। माँ अपने पुत्र पर अकृपालु हो ही नहीं सकतीं। स्तोत्र में लिखा भी है—'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।' यह महामंत्र हैं। इस महामंत्र के पीछे वह अपने को रक्षित समझता था। वह बहुत डरपोक था। उसे हर बात से डर लगता था।

उसकी सीमित आय में खर्च चलाते चलाते लता ऊब गयी थी। एक अव्यक्त सा तनाव उसके मन में छाया रहता था। वह इससे मुक्ति चाहती

थी। संसार की गतिविधि देख रही थी। लोग कैसे कैसे चोचले बदलते हैं। वह चाहती थी कि उसका पति भी ऐसा ही छद्म ईमानदारी का आवरण ओढ़ ले। पैसा तो मिलेगा।

वह एक भयानक दस्यु को गिरफ्तार करने के लिये तैनात किया गया था। केवल दो घंटे की ढील देने के लिये उसे पाँच लाख रुपया देने का प्रलोभन दिया गया था। उसने उस दस्यु को अपने दल के घेरे में ले लिया था। इस दो घंटे की ढील मिलने पर, वह नेपाल राज्य में भाग जाने और वहाँ पर अपना दल कायम कर अंतर्राष्ट्रीय दस्यु बन जाना चाहता था।

इतने रुपयों का नाम सुन कर लता के मुंह में पानी भर आया था। वह सोचती थी कि इससे तो उसकी सभी आकांक्षायें पूरी हो जायेगी। ढ़ेर घारे गहने बनवा लेगी। श्रीमती नटराजन जैसी चमकदार साड़ियाँ खरीद लेगीं। ड्राइंग रूम के सोफे बदल जायेगे। गोदरेज की आलमारी आ जायेगी। लता उन काल्पनिक रुपयों से कितने सपनों का सृजन कर बैठी थी। परन्तु उसने लता को समझाया था कि यदि दस्यु से रुपये लेते वह पकड़ा गया तो जेल तो होगा ही और नौकरी भी जायेगी। यदि ऐसा नहीं हुआ तो इस पाप की कमाई से परिवार का भला नही होगा। बच्चों पर बुरा असर पड़ेगा। लता ने नाक भौं सिकोड़ कर कहा था—

—'वाह ! सभी तो करते हैं। आजकल का तो यह रिवाज़ है। बड़े से लेकर छोटों तक का काम ऐसे ही चल रहा है।'

इस पर उसने लता को समझाया था कि यदि उसने रामपूजन को पकड़ लिया तो राज्य सरकार से घोषित एक लाख रुपये का ईनाम तो

मिलेगा ही, अखबार में नाम छपेगा तथा सरकार उसे प्रशंसापत्र भी देगी। लता ने बड़े ही भारी मन से अपने नुकसान को बर्दाश्त कर लिया था। केवल अपने को ढाँढ़स देने के लिये उससे लता ने पूछा था—

—'अखबारों में नाम छपेगा न ?'

—'हाँ ! हाँ ! क्यों नहीं ?'

लता ने एक त्यागिनी सी मुद्रा बनाकर संतोष कर लिया था। अखबारों में नाम छपने की प्रसन्नता के आगे उसे पाँच लाख रुपये का नुकसान तुच्छ लगा। हुआ भी वही। रामपूजन मुठभेड़ में उसके हाथों मारा गया था। अखबारों ने चार कालम में मुठभेड़ की रोमांचक कहानी प्रकाशित किया था। मरे दस्यु के साथ उसका फोटों भी छपा था। अखबारों की कटिंग उसने अपने हार के डिब्बे में रख दिया था। हर किसी को उन कतरनों को वह दिखाती थी। लता बड़ी ही गर्वोन्नत महसूस करती थी कि वह एक वीर पति की पत्नी है।

अपनी उपलब्धि के लिये वह माँ दुर्गा को ही कृपा मानता था। उसे यह स्मरण कर रोमांच हो आता था कि वास्तव में—'कुपुत्रों जायते, क्वाचिदपि कुमाता न भवति।' वह जोर-जोर से दुर्गा सप्तशति का पाठ करने लगता था। न जाने क्यों पाठ के समय ही उसे वह लड़की भी स्मरण ही आती थी। उसका चेहरा भी नीरजा से मिलता था। वह सड़क बुहारती थी। नीरजा की भाँति वह लड़की भी उसे लोलुप निगाहों से देखती थी। प्रत्येक दीपावली, दशहरा तथा छोटे-छोटे त्यौहारों पर उससे हठकर त्यौहारी माँगती थी। कई दिनों बाद उससे बोलने का मौका मिलता था बेचारी को। पैसा पाकर वह लड़की बड़े अदब से उसे सलाम करती थी।

नीरजा को बाहों में भरने के बाद उसे दो युवतियों की मादकता का आनन्द आता था। एक नीरजा, दूसरी उस सड़क बुहारने वाली लड़की का। दूसरे को वह छू नहीं सकता था। वह गन्दी हालत में रहती थी। इस कारण त्याज्य थी। उसको मुंह लगाने का अर्थ था, बदनामी और सर्वनाश। नीरजा की कृपा का अर्थ था, उसके भाई जो उच्च अधिकारी था, की कृपा, फिर उसकी तरक्की और एक उच्च समाज में उच्च जीवन का उपभोग।

लेकिन नीरजा से अलग होते ही उसे ऐसा लगता कि यह सब एक छलना है। उसे सूरदास के पद की एक पंक्ति याद आता—'मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै। जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पुनि जहाज पे आवै।' उसे लगता कि लता जहाज है, और वह पंछी। दिन भर, रात भर चाहे रामपूजन का पीछा करे, नीरजा के साथ फ्लश खेले, उसे बाहुपाश में भरे, उस सड़क बुहारने वाली लड़की को बख्शीश दे, लेकिन इन सब क्रियायों के बाद रात्रि से गहरे पर्दे के पटाक्षेप होने के बाद उसे लता के विश्वास, आस्था, आदर तथा उसकी अनेकानेक स्त्री सुलभ कमजोरियों के आलिंगन में आबद्ध होने का सुख मिलता।

रात बिता कर पंछी फिर प्रत्येक कुहरे को चीर कर उड़ जाता था। उसे चैन नहीं है। उसका आदिम रूप बार-बार उभर कर सामने आता था। कुहरों के साये कई बार छँटते थे। बार-बार पंछी फिर जहाज पर आता था। लेकिन वह जहाज धीर गम्भीर चला जा रहा था। उसमें भी गति आती थी, जब अविनाश पास होता था। लता तथा वह, दोनो एक दूसरे के प्रति जहाज व पंछी थे। लेकिन यह निश्चित था कि चाहे कुहरों के साये छटे या गहरे हों उनका सम्बन्ध अबाध गति से चलता रहेगा।



प्रीतम आय बसो मोरे मन में

जाड़ों के दिन थे। लोचन ने नई-नई सगाई की थी। चालीस साल का अधेड़ लोचन, रधिया के षोडशी रूप-पाश में बंध चुका था। दो महीने से कारखाने की ड्यूटी के अतिरिक्त उसने अपने घर को नहीं छोड़ा था। यार दोस्त परेशान थे। लोचन में यह परिवर्तन उनके लिये नया था।

रात बीत चुकी थी। म्युनिसपैलिटी के नहर के किनारे एक छोटे से घर में, पूस की पुरवैया बयार रोकने के लिये टाट का एक परदा पड़ा था। खपड़े के कोरो और छत काले हो रहे थे। नहर की बदबू, घर की सीलन और लोचन की तेल से चीकट गूदड़ों की तेलिया उसाँध से एक मिचलन पैदा हो रही थी। पर लोचन नाक बजाता हुआ, अपने वातावरण की उपेक्षा कर सो रहा था।

रधिया उठी और परदे के छेद से झांक कर देखा कि रामनाथ अपने रिकशे में हवा भर रहा था। गोरखपुर की उबड़ खाबड़, सड़क टनटनाहट से राह चलने वालों के कानों पर तरस न खाकर, कचहरिया देहातियों पर दोष मढ़ने वाले तथा अपनी सायकिल से हवा से होड़ लगाने वाले, क्षोभ, निराशा, और ग्लानि के अवतार बने नाक की सोध में भागे चले जा रहे थे। उसने समझ लिया कि छै से उपर हो चुका है।

रधिया ने लोचन को एक हल्का सा धक्का दिया और कहा–'ऐ'

'आँय' कह कर लोचन ने करवट बदली

'अरे छे क भोपा हो गइल'

'अच्छा' और लोचन हड़बड़ा उठा

'अरे कारखाना नाहीं जाबै' रधिया ने अधिकार जताया।

'हां ! हां !! जाबै काहे नाहीं'

'साढ़े छे होत बाय कब जाबैं'–और रधिया आगे न कह कर के अपने काम में जुट गई। लोचन भी अपनी चारपाई को चरमराता हुआ उठ खड़ा हुआ।

शाम को रामनाथ अपने अन्य रिक्शेवालों के साथ लोकों के फाटक पर खड़ा था। कारखनियों को आज तनख्वाह मिलने वाली थी। फल और मिठाई वाले भी अपने खोंचे लगाकर भारी आमदनी की लालच में डटे हुए थे।

साढ़े चार का भोपा बजा। काले काले मशीनों की समता प्राप्त करने वाले दूसरे जीते जागते मशीनों की एक भारी भरकम भीड़, वातावरण में किरोसन की तेलिया गंध फैलाती हुई फाटक से निकली और सामने के स्थान में फैल कर कुछ देर बाद इधर उधर रेंग गई।

रामनाथ रिक्शे को हैंडिल पकड़े लोचन की इन्तजार में खड़ा था। फाटक से इक्के दुक्के कुलियों का निकलना बन्द नहीं हुआ था। लोचन भी साथ में केवल के गले में हाथ डाले निकला। पांव शरीर के थके लोथ के ढ़ोने में असमर्थ हो रहे थे, फिर भी टखने घसीटता हुआ वह चला। रिक्शे के पास आकर लोचन ने अपने डेढ़ मन के बोझ को रिक्शे की सीट पर पटक दिया। केवल भी पीछे सवार हो गया। दोनों के बाझ का झटका पाकर वह चरमरा कर डोली और फिर शान्त हो गई।

'रामनाथ आज तो जोभ चटकत बाय भाई!' लोचन ने रिक्शे पर से कहा।

'हां! हो लोचन आज, एक अद्धा, महुआ कै ठर्रा पोये कै तो हमरो मन बाय।' केवल ने हामी भरो।

'लेकिन लोचन भैया, उ घरवा में कै" और रामनाथ ने पुतलियों को एक आर घुमा कर लोचन के हृदय पाश को ओर संकेत कर दिया।

'अरे जावे भो दै। कौनो किरिया थोरै खइले वांटी। एक रोज में का होला।'

रामनाथ अधिक विरोध न कर सका। करता भी क्यों? वह तो इसो अवसर को ताक में था। बस फिर क्या पूछना। वह अपने वायुयान पर उन दोनों को लेकर उड़ चला।

× × ×

साढ़े पांच बज गये। अंधेरा भो हो चला। लोचन की प्रतीक्षा करते करते रधिया 'उंह' करके उठो और दिया जला कर भोजन बनाने में जुट गई। बैंक के घंटे की आवाज गिनते गिनते मानों रात भी नहीं

बीतना चाहती थी। घंटे की एक-एक चोट पर कलेजा धक् धक् करके रह जाता था।

रधिया भोजन बना चुकी। अब वह क्या करे ? कोई काम भी तो नहीं था। आँखे पथ में बिछाये, लोचन की अधेड़ सूरत की प्यासी, परदे के छेद से वह राह निहारती रही। सिनेमा खत्म हो गया। एक छै छैला सड़क पर गाता हुआ जा रहा था।

'प्रीतम आय बसो मोरे मन में'

परन्तु उसका प्रीतम तो न आया। गीत की इस कड़ी को रटती हुई, पिंजड़े की पंछी की भाँति छटपटा रही थी। किससे कहे ? किससे सुने ? उनके पांव और मुंह दोनों पर तो शर्म का ताला लगा हुआ था। बार बार वह परदे की ओट से सड़क पर झांकती और कोई राही सामने से आता और गुजर जाता लेकिन उसका प्रीतम तो न आया और न आया।

सिनेमा का दूसरा शो भी समाप्त हुआ। रधिया की काली-काली आंखों में नींद का अंधेरा छाने लगा। अलसाई हुई, झुंझला कर उसने अपना कोमल शरीर लोचन की गूदंडों में छोड़ दिया। चारपाई में चरमराहट हुई। इस चरमराहट के कुछ देर बाद रधिया निद्रा की उस लोक में पहुँच गई जहाँ वह लोचन को भी भूल गई।

× × ×

सबेरे छे का भोपा बजा। रधिया हड़बड़ा कर उठी और उसने कहा 'ऐ' लेकिन गुदड़ हाथों की झकझोर से एक ओर खिसक गया। कलेजा

धक्। उसका वह 'ऐ' तो रात भर नहीं आया। असमंजस में और कर्त्तव्य विमूढ़ हो वह खड़ी रह गयी।

इसी समय 'आह' को एक ध्वनि रधिया के कुसुम हृदय को चोथ गयी। दौड़ कर परदे को छेद में आंखे डाल दो। उसका वह 'ऐ' जाड़ों की रात में मोरो में पड़ा नशे की खुमारी मिटा रहा था। रधिया ने पाँव बाहर कर मोरी में से लोचन को भोतर खोच लिया।

गरमी पाकर लोचन बड़बड़ाया 'सारे ढेर–सा......पिया......देहलै। हरामी कहीं के'

रधिया ने देह पोछती हुई मन में कहा 'यह सफाई क्यों प्रीतम। मैंने तुमको कुछ कहा थोड़े ही। तुम तो मेरे सर्वस्व हो। चाहे जैसे भी हो, अब तो तुम्हो हो मेरे प्रोतम। मेरे 'ऐ'।



पी० काम्प्लेक्स

पहला लिखता गया।

दूसरा देख रहा था।

पहला लिख रहा था। एक कहानी। एक अजीब कहानी।

"भूमिका"

कथाकार कोई डाक्टर या रसायनशास्त्रवेत्ता तो नहीं है, पर एक कथाकार का डाक्टरनुमा आविष्कार उसके हाथ लग गया है। जनसुलभ करने के लिए इसे प्रकाशित किया जा रहा है। 'पी० काम्प्लेक्स' कोई रामबाण लगाने या खाने की औषधि नहीं है। यह एक साहित्यिक इन्जेक्शन है, जिसका प्रभाव तुरन्त होता है। बिल्कुल कायाकल्प हो जाता है।

इस भूमिका को पढ़कर दूसरा चोंक पड़ा। पूछा "क्या लिख रहे हो ?"

"कथाकार का बुलेटिन, अर्थात् कहानी, बिल्कुल फार्मेसिस्ट फार्मूले पर"—पहला उत्तर देकर रहस्य से मुस्कराने लगा।

दूसरा चकित था।

पहले ने कहा

'बस देखते जाओ। सब समझ जाओगे।'

फिर वह लिखने लग गया। दूसरा चकित देखता गया।

'प्रभाव।'

इन्जेक्शन का सीधा प्रभाव मस्तिष्क और हृदय पर होता है। मरीज़ तुरन्त स्तब्ध हो जाता है। फिर उसका शरीर कड़ा होने लगता है। इन्जेक्शन की तीव्रता से उसका जी चाहता है कि लगाने वाले का गला ही टीप दे। परन्तु इन्जेक्शन लगाने वाले से मरीज़ डरता रहता है। शरीर कड़ा होने के बाद वाक्शक्ति प्रखर हो उठती है, फिर धारा प्रवाह बोलकर नये-नये सम्बन्धों को जोड़ने की इच्छा होती है। ये ऐसे सम्बन्ध होते हैं जो संस्कृत और सभ्य समाज में उच्चारित नहीं हो सकते। मरीज को अपने मर्ज का ज्ञान हो जाता है, अर्थात् रोग निदान हो जाता है। रोगी को फिर जीवन का नवीन रसबोध होने लगता है। दृष्टि साफ हो जाती है।"

दूसरे ने पहले को कनखी से देखा।

पहला मुस्कराया। एक कुटिल मुस्कराहट। उसकी लेखनी चलती रही।

"कुप्रभाव।"

इन्जेक्शन लगने के बाद मरीज को कुछ दिनों तक कुछ अच्छा नहीं लगता। कई दिनों तक उदासी रहती है। परन्तु इससे घबराना नहीं चाहिये। समय बीतते-बीतते कुप्रभाव समाप्त हो जाता है। यदि मरीज की तकलीफ बढ़ जाये तो, उसे खुली हवा में टहलना, सिनेमा देखना तथा दोस्तों के साथ कैफे में चाय, काफी या नमकीन लस्सी पीना चाहिये। हो सके तो कुछ दिनों के लिए घर छोड़ देना चाहिये।

दूसरा घबराकर बोल उठा।

'वाह रे तेरा इन्जेक्शन और उसका प्रभाव।'

आगे पढ़ेगा तो आखें चुँधिया जायेगी। पहला कहकर लिखने लग गया।

"किन रोगों में दवा दी जा सकती है?"

तबियत का हल्का होना, अत्यधिक हँसी आना, रूमानी मूड में सिनेमा या नुमाइश जाने की इच्छा होना या होटल में बैठकर कुछ अच्छी चीज खाने की इच्छा होना।

"किन रोगों में दवा नहीं दी जा सकती?"

जब आप अत्यधिक उदास हों। उस समय तो कत्तई मत लीजिये जब आप मन ही मन किसी का मर जाना मना रहे हों या आप चाहते हों कि आप या कोई दूसरा आपके शत्रु की हत्या कर दे। ऐसी दशा में जान जाने का खतरा है।

दूसरे ने पहले की कलम पकड़ ली।

"ये कैसी बीमारियाँ हैं भाई?"

'ये साहित्यिक बीमारियाँ हैं।'

पहले ने कहकर उसे फिर आश्वस्त किया। 'घबराओ नहीं। बस पढते जाओ।'

दूसरे ने कलम छोड़ दी। पहला फिर लिखने लगा।

"पथ्य"

"चौबीस घंटे तक भोजन मत करिये। पानी धीरे-धीरे और मुंह में देर तक रखकर पीजिये अर्थात् एक लोटा पानी चार घंटे में एक आसन पर बैठकर पीजिये।"

"निषेध"

ऐसी गरम चीजें न खाइये जिससे उत्तेजना पैदा हो। शराब छूइये नहीं वरना असर तुरन्त उतर जायेगा।

"इन्जेक्शन लगाने की विधि"

इसे लगाने के लिए किसी उपकरण की आवश्यकता नहीं होती, न तो सिरिंज की, न स्पिरिट की, न ही सूई की। केवल सूई लगाने वाले को तथा मरीज का होना ही काफी है। कभी-कभी नजरों, अधिकांशत: वाणी और कभी कभी (कम अवस्था में)। बाहु और पाद का भी उपयोग किया जाता है।

"कौन इसके बारे में सलाह दे सकता है?"

इसके बारे में किसी एम० बी० बी० एस० डाक्टर को मालूम नहीं। यह औषधि केवल विशेष कम्पाउण्डरों को ही मालूम हैं। केवल वे ही इसे लगाने की विधि भी जानते हैं। कम्पाउण्डरों की सूची आगे दी गयी हैं।

"कम्पाउण्डरों की सूची"

संसार के प्रत्येक पति-पत्नी परस्पर मरीज़ और कम्पाउण्डर हैं। यदि कोई जोड़ा इसका अपवाद है तो वह धन्य है। उसको मेरा शतशत नमस्कार है। वह तुलसीदास के शब्दों में—

"अवसि देखिये, देखन जोगू है।"

ऐसे लोग अनुसंधान स्थल से सम्पर्क स्थापित करें।

'वाह भाई वाह। अजीब गोरख-धन्धा है। क्या चीज़ है यह?' दसरा व्याकुल हो पूछ बैठा।

'इसके रासायनिक घटक पढ़ोगे तो और चकराओगे।'

पहले ने एक उलझा उत्तर दिया।

दूसरा चकराया देखता रहा।

पहला लिखने लगा।

"रासायनिक घटक—"

१. तीक्ष्ण नेत्र दंश—१५ ग्राम। सैकड़ों में परिवर्तित कर लें।

२. ओष्ठस्फुरण—५ ग्राम। सैकड़ों में परिवर्तित कर लें।

३ दतघर्षण—१० ग्राम। सैकड़ों में परिवर्तित कर लें।

४. नासिकास्फुरण—१५ ग्राम। सैकड़ों में परिवर्तित कर लें।

५. अपशब्दों का मिश्रण—१२० ग्राम। सैकड़ों में परिवर्तित कर लें।

६. नेत्रजल—आवश्यकतानुसार (ताजी होनी चाहिये)।

"मिलने का स्थान"

यदि आप पुरुष हों तो आपकी पत्नी और नारी हैं तो आपके पति इसको छिपाकर रखे हैं। उन्हें किसी प्रकार उत्तेजित कर दवा माँगिये।

"मूल्य"

मुफ्त मिलता है।

"पैकिंग"

चूंकि दवा को पैक करने लायक किसी शीशी का अब तक आविष्कार नहीं हो सका इस कारण अदृश्य रूप में कम्पाउण्डर इसे अपने पास छिपाकर रखता है।

पैकिंग तक आते-आते दूसरे के धैर्य ने जवाब दे दिया। झुंझलाकर बोला—

'आखिर इस अल्लम गल्लम का मतलब ?'

पहले ने कलम रख दिया। दूसरे के कौतूहल जनित व्यग्रता पर मुस्कराता बोला—

'सुनो प्यारे ! इसके अनुसंधान का इतिहास सुनाता हूँ। सुनकर तुम्हारे ये डब्बे जैसी खुली आँखें छोटी हो जायेगी और तुम कुछ सोचने लगोगे।'

'अच्छा ! अच्छा ! कुछ फूट भी तो। दूसरे ने अविश्वास से कहा।'

'तो सुन।' पहला बोला 'औषधि का अनुसंधान हकीम नत्थेमल मेमोरियल मेडिकल कालेज के ट्रांसताप्ती होस्टल के कमरा नं० १४१ में सितम्बर १९६७ ई० की सम्भवतः २९ तारीख को प्रातःकाल हुआ। उस समय मरीज एवं डाक्टर पंकज, कपिलेश्वर तथा मनोरम बैठे चाय पी रहे थे जब मैडम क्यूरी के रेडियम की भांति इस पी०

काम्पलेक्स का नामकरण हुआ। आविष्कार तो पहले ही हो चुका था। केवल प्रभावगत दृष्टि ही साफ हुई।'

पहला थोड़ी देर रुका। दूसरा चकित सा बैठा था। उसके समझ में अभी भी कुछ नहीं आया।

पहला कहता गया।

'अनुसंधान की पृष्ठभूमि भी सुन।'

दुसरा चुप था। आंखें मगर कह रही थी। हाँ हाँ कहो। पहला कहने लगा।

"सन् १९५५ ई० की बात है। पंकज की शादी हो गयी थी। बेचारा उस समय सातवीं जमात में पढ़ता था। उस समय की शिक्षा के अनुसार पत्नी ठीक थी। याने पढ़ी-लिखी नहीं थी। यदि वस्तुस्थिति विवाह के समयानुसार रहती तो कोई बात नहीं रहती। जोड़ा बिलकुल आदर्श रहता। परन्तु सौभाग्यवश कहिये या दुर्भाग्यवश पति आगे पढ़ता गया। एक तो करैला दूसरे नीम चढ़ गया। पतिका आगे पढ़ना वह भी साहित्य से एम० ए० करना, पंकज की पत्नी के लिए खतरनाक हो गया।

इसका असर यह हुआ कि पत्नी दौड़ में पिछड़ गयी। पंकज जमाने की रफ्तार में आगे बढ़ गया। पढ़ने के बाद पंकज को एक दफ्तर में नौकरी मिली। दफ्तरी माहौल बिलकुल रस शून्य है। एक से नौ और शून्य, कई बार घूम घामकर इकाई से लेकर अरबों शंखों के रूप में आते हैं। कम्प्यूटर, गुणा भाग, जोड़ घटाना की प्रक्रिया पंकज की प्रकृति के प्रतिकूल पड़ती है।

बात दफ्तरी माहौल तक रहती तो ठीक रहती। लोकल ट्रेन से उपनगर से दफ्तर आने-जाने की व्यवस्था ठीक है। इस दशा में वह कारोबारी व्यक्ति रहता। बिलकुल घरेलू मार्का। फिर पत्नी के पिछड़ेपन से कोई हानि नहीं होती। उस दशा में पंकज अंकों के चक्कर में यह भी भूल गया होता कि उसने कभी क ख ग भी पढ़ा है।

ऊपर कह ही चुका हूँ कि करैला नीम चढ़ गया। दफ्तरी वातावरण भी पंकज के साहित्यिक अभिरूचि में अन्तर न ला सका। केवल यही नहीं, वह कवि हृदय हो गया। स्थितियों और फलेशी की सूक्ष्मता और चित्रात्मकता से गीतों तथा मुक्तकों के लिखने पढ़ने की क्षमता आ गयी है। इस कविता रचना प्रक्रिया में उसे पत्नी से बड़ी आशा रहती थी। वह पत्नी में काव्यशास्त्रकारों द्वारा वर्णित नायिका भेदों, दशाओं तथा गुणों की सभी परिभाषाओं को नयी मान्यताओं और परिपार्श्वों में देखना चाहता था। उसे पत्नी से बड़ी आशाएँ थी परन्तु बेचारी की शैक्षणिक संकुचित सीमाओं ने उसे साथ-साथ चलने तथा सोचने में असमर्थ बना दिया।

पत्नी, नायिका के अनेक भेदों में केवल कलहान्तरिता ही बन सकी है अर्थात् वह नायिका, जो प्रियतम से सपत्नी या परकीया नायिका के कारण कलह ही करती हैं। यह सही नहीं है कि पंकज की कोई परकीया या सपत्नी है परन्तु उसके पत्नी का ऐसा ही विश्वास है। इस विश्वास का कारण भी है।

विश्वास की बात यूं उभरी कि एक रात उसने अपनी कल्पित मुग्धा नायिका की कौशिकी नर्म सम्भोगपरक वृत्ति से संदर्भित एक नये

अन्दाज के मुक्तक का अर्थ उसे समझा दिया। उस रात्रि तो वह बड़ी पुलकित सी पंकज के बाहुपाश में आबद्ध, आदर्श बनी पंकज को पत्नी धर्म का पूर्ण रसास्वादन कराती रही।

लेकिन सुबह होते ही शीशे के सामने बैठकर उस नायिका के रूप से अपने रूप का मिलान करने लगी तो सन्देह उभरने लगा। तब से वह पंकज को संशकित दृष्टि से देखती है। उसकी हर आदत की मीमांसा करती है। तनख्वाह पहली तारीख के शाम को रखवा लेने का प्रयत्न करती है। पंकज उसमें से कुछ मार ही देता है। इससे भी शंका की पुष्टि होने लगी कि वह अवश्य अपनी प्रेमिका को देता होगा। वरना उसके जैसे उपनगर के अन्य लोग पहली तारीख को वेतन—"ॐ वेतनम् समर्पयामि" कहकर महीना के उन्तीस दिन फाकेमस्त रहते हैं।

पंकज की पत्नी की शंका और क्रोध का शिकार उसका भाई कपिलेश्वर भी होता है।

'क्यों?' दूसरे ने प्रश्न कर ही दिया।

'इसको विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं।' उसने उत्तर दिया। फिर यह सोचकर कि पूरा उत्तर न आ सका वह कहता गया। 'एक कारण बता देता है। पंकज की पत्नी कलहान्तरिता तथा शंकालु रहते-रहते विचित्र हो गयी है। फिर विचित्रता का फन्दा किसी के गले में पड़ सकता है।'

पहला थोड़ी देर रुका। गहरी साँस लिया जैसे कुछ सोच रहा हो। फिर कहता गया।

'मनोरम की पत्नी भी तो कम विचित्र नहीं है। पंकज की वह भाभी लगती है। परन्तु पंकज को वह छोड़ती नहीं। अक्सर कुछ न कुछ सुनाती ही रहती हैं। मनोरम और उसकी पत्नी में भी विचार वैषम्य है। दोनों बिलकुल दो दिशाओं में सोचते हैं। भाभी के शब्दों से अक्सर पंकज तिलमिला उठता है। पंकज पत्नी और भाभी के स्वभावों को विचित्रताओं से दुःखी और त्रस्त है। शायद इसी कारण पंकज ने यह विचार बना रखा है कि स्त्रियाँ स्वभावतः शंकालु और कूड़मगज़ होती है।'

दूसरे ने टोका।

'ऐसा तो वह संसार की सभी स्त्रियों के लिए नहीं कह सकता।'

'हाँ'—पहले ने कहा—'मैंने भी पंकज को टोका था। परन्तु पंकज इस पर चुप रह गया था। पत्नी और भाभी के स्वभाव की विचित्रताओं ने उसके मन में ग्रन्थि बना लिया है।'

दूसरा अभी भी अत्यधिक उत्सुक था। वह अन्त तक बात एक साँस में सुन जाना चाहता था। बच्चों की तरह बोला—

'अच्छा तो आगे की बातें बताओ।'

'उन दिनों पंकज और मनोरम घर के वातावरण से ऊबकर मटरगश्ती करने के लिए कपिलेश्वर के पास पहुँचे थे। दोनों कपिलेश्वर के साथ कमरा नं० १४१ में रहते थे।

विटामिन बी-काम्लेक्स की गोलियाँ कमरा नं० १४१ में फैली रहती थी। कपिलेश्वर को ये अमानी से मिल जाती थी। पंकज और मनोरम ने उचित अवसर समझकर इन्हें चबैना की तरह मुँह में झोंकना

शुरू कर दिया। सोच रहे थे कि शीघ्रातिशीघ्र पेट ठीककर शहर के सबसे आलीशान होटल में मुर्गमुसल्लम उड़ाये।

कमरा नं० १४१ के उस तिगड़ी की आनन्दी प्रकृति बड़ी ही विशिष्ट है। पेट खराब रहे तो रहे, मगर रेस्तराँ में बैठकर तर माल उड़ाना, फिर सड़कों पर इधर-उधर ताक झाक करते घूमना या सिनेमा देखना, फिर देर तक साहित्य की मीमांसा करना जिसमें स्त्रियों के प्रकृति पर बहस अवश्य चलती, फिर देर में सो जाना। तर माल खाने पर अगर पेट में गड़बड़ी हो जाये तो इन्टरोक्विनाल और सल्फाग्वेनाडीन की गोलिया खाना और पेट की खराबी ठीककर फिर खाना। क्रम कभी टूटता ही नहीं। परमेश्वर ने शरीर दिया है किसलिए, इसीलिए न कि काम तो करो मगर जो क्षण मौज के मिले उन्हें नीबू की तरह भरपूर निचोड़ लो। वरना जिन्दगी का गलीज़ नाक में दम किये ही है।

उस दिन प्रातःकालीन चाय के पहले ही संसार के स्त्रियों के बारे में लिखो गयी कविताओं पर बहस होते-होते, बहस की रुख पंकज के घर के माहौल पर घूम पड़ी थी। कपिलेश्वर, उसी बोच पंकज से अपनी पत्नी के बारे में सवाल पेश कर बैठा था। उसने शिकायत भी किया था कि भाभी का (पंकज की पत्नी का) व्यवहार उसके तथा उसके पत्नी के प्रति बहुत कष्टप्रद रहता है। वे इस समस्या पर, बहस में जुट गये। पंकज पत्नी के पक्ष की वकालत करते करते बहस में उखड़ रहा था। उनके बहस की गर्मी कमरे में होटर पर रखे चाय के पानी की गर्मी से भी अधिक बढ़ने लगी थी।

मनोरम चुप था। अपने ही मूड में एक विटामिन बी० काम्पलेक्स

को एक पीली गोली हाथ में लिए सोच रहा था कि पंकज भी तो मेरी पत्नी से परेशान रहता है। वह शिकायत भी कभी-कभी करता है, फिर क्यों पंकज इस प्रकरण पर बहस कर रहा है। मनोरम का एक चुहुल सूझी। बहस के बीच टोकता-सा बोला।

"चाय के पानी में अगर इस गोली को डाल दूँ तो?"

कपिलेश्वर को उत्तर देने में देर लगी। वह मुँह फुलाये बैठा था। तब तक मनोरम ने गोली पानी में डाल दी। गोली मसमसा कर फूटी, फिर पीलापन पानी में फैल गया। कपिलेश्वर, इस पर बोल उठा—

"यह क्या किया भाई साहब? पानी खराब हो गया। चाय ठीक नहीं बनेगी।"

उसने पानी फेंक दिया तथा हीटर पर दूसरा चढ़ाया। चाय मिलने का समय दस मिनट और खिसक गया।

मनोरम मुस्करा रहा था। पंकज सीरियस हो गया था। कपिलेश्वर ने बहस के मध्य कुछ कड़ी बातें कह दी थी। तब तक दोनों के बीच मध्यस्थता करता-सा मनोरम बोला।

तुम्हारी और पंकज की समस्यायें समान है। तुम भी भाभी से परेशान हो तथा पंकज भी अपनी भाभी से परेशान है। पत्नियों की भी समस्यायें समान हैं। दोनों ही अल्पबुद्धि तथा विचित्र हैं।

पंकज इस पर अपने और कपिलेश्वर के पत्नी की काम्पलेक्सेज का विवेचन छेड़ बैठा। मनोरम इसी बीच 'आर्केमिडीज' की तरह "इउरेका इउरेका" बोल उठा।

"एक बात सूझी पंकज!"

"क्या है उसने पूछा।"

"पत्नी की काम्पलेक्स याने पी० कामप्लेक्स और भाभी का काम्पलेक्स याने बी० कामप्लेक्स ।"

पंकज इस शब्द पर सब बहस की तल्खी भूलकर खिलखिला पड़ा। तब तक हीटर पर पानी खौलने लगा था। कपिलेश्वर इस वैज्ञानिक नामकरण पर मुस्कराता चाय बनाने लग गया था।

पहला इतिहास कहकर चुप हो गया।

दूसरा सोचने को विवश हो गया था। उसके डब्बे जैसे खुली आँखों की दृष्टि अन्तर्मुखी हो गयी थी।

पहले से दूसरे के मूड को देखकर रहा न गया। पूछा—

क्या सोच रहे हो ?"

'तुम्हारा इकतरफा अत्याचार'

'क्या ?'

'पति भी तो विचित्र होते हैं। सारा दोष स्त्रियाँ के सर पर ही क्यों ?"

पहला खिलखिला उठा। दूसरा मूढ़ जैसा दिखने लगा। खूब हँसने के बाद पहला बोला।

'आविष्कर्ताओं ने संशोधन बाद में किया। पी० काम्पलेक्स से अब पत्नी काम्पलेक्स के साथ पति काम्पलेक्स भी समझा जाता है ?'

कहानी खत्म हो गयी थी। दोनों दूसरे मसलों में थोड़ी देर में उलझ गये।



कथाकार परिचय

नाम	न्यायमूर्ति गणेश दत्त दूबे	
जन्म-स्थान व तिथि	गोरखपुर, 13 मार्च 1931	
पूर्व सेवा	सेवा निवृत्त न्यायाधीश उच्च न्यायालय इलाहाबाद	
प्रकाशित ग्रन्थ	1. दो नयन बनजारे	(काव्य संग्रह)
	2. कुहरों के साये	(कथा संग्रह)
प्रकाश्य	1. तुरुप का पत्ता	(उपन्यास)
	2. आओ लौट चलें	(,,)
	3. पार्किन्सन रोगी का मामला	(,,)
	4. नियति का क्रूर कृत्य	(,,)
	5. मानुष तनु	(प्रबंध)
	6. सीमांकन और सर्वेक्षण	(कानून)
सम्पर्क सूत्र	H I G–16 अशोक विहार, द्वितीय चरण पहड़िया वाराणसी	